अनुक्रम

श्रीमद् भागवत महापुराणांतर्गत

श्री नारायण

निवेदन

'श्रीमद् भागवत' के नवम स्कन्ध में भगवान स्वयं कहते हैं-

साध्वो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।

मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।

अर्थात् मेरे प्रेमी भक्त तो मेरा हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तों का हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।

पुराणशिरोमणि 'श्रीमद् भागवत' ब्रह्माजी, देवताओं, शुकदेवजी, शिवजी, सनकादि मुनियों, देवर्षि नारद, वृत्रासुर, दैत्यराज बलि, भीष्म पितामह, माता कुन्ती, भक्त प्रह्लाद, ध्रुव, अक्रूर आदि कई प्रभु प्रेमी भक्तों द्वारा श्री नारायण भगवान की की गयी स्तुतियों का महान भण्डार है। प्रस्तुत पुस्तक ध्रुव, प्रह्लाद, अक्रूर आदि कुछ उत्तम परम भागवतों की स्तुतियों का संकलन है, जिसके श्रवण, पठन एवं मनन से आप-हम हमारा हृदय पावन करें, विषय रस का नहीं अपितु भगवद रस का आस्वादन करे, भगवान के दिव्य गुणों को अपने जीवन में उतार कर अपना जीवन उन्नत बनायें। भगवान की अनुपम महिमा और परम अनुग्रह का ध्यान करके इन भक्तों को जो

आश्वासन मिला है, सच्चा माधुर्य एवं सच्ची शांति मिली है, जीवन का सच्चा मार्ग मिला है, वह आपको भी मिले इसी सत्प्रार्थना के साथ इस पुस्तक को करकमलों में प्रदान करते हुए समिति आनंद का अनुभव करती है।

हे साधक बंधुओ ! इस प्रकाशन के विषय में आपसे प्रतिक्रियाएँ स्वीकार्य हैं।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति,

अमदावाद आश्रम।

अनुक्रम

व्यासजी द्वारा मंगल स्तुति

भगवान सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं सच्चिदानंदस्वरूप हैं। एकमात्र वे ही समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान आत्मा हैं। उनकी लीला अमोघ है। उनकी शक्ति और पराक्रम अनन्त है। महर्षि व्यासजी ने 'श्रीमद् भागवत' के माहात्म्य तथा प्रथम स्कंध के प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रुप में भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति इस प्रकार से की हैः

सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे।

तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः।।

'सच्चिदानंद भगवान श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं, जो जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के हेतु तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक – इन तीनों प्रकार के तापों का नाश करने वाले हैं।'

(श्रीमद् भागवत मा. 1.1)

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्

तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।।

'जिससे इस जगत का सर्जन, पोषण एवं विसर्जन होता है क्योंकि वह सभी सत् रूप पदार्थों में अनुगत है और असत् पदार्थों से पृथक है; जड़ नहीं, चेतन है; परतंत्र नहीं, स्वयं प्रकाश है; जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं, प्रत्युत उन्हें अपने संकल्प से ही जिसने उस वेदज्ञान का दान किया है; जिसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े विद्वान भी मोहित हो जाते हैं; जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियों में जल का, जल में स्थल का और स्थल में जल का भ्रम होता है, वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत-स्वप्न-सुषिप्तरूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान-सत्ता से सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयं प्रकाश ज्योति से सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्य से पूर्णतः मुक्त रहने वाले सत्यरूप परमात्मा का हम ध्यान करते हैं।'

(श्रीमद् भागवतः 1.1.1)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

कुन्ती द्वारा स्तुति

अश्वत्थामा ने पांडवों के वंश को नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था। उत्तरा उस अस्त्र को अपनी ओर आता देख देवाधिदेव, जगदीश्वर प्रभु श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने लगी कि 'हे प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान हैं। आप ही निज शक्ति माया से संसार की सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं। स्वामिन् ! यह बाण मुझे भले ही जला डाले, परंतु मेरे गर्भ को नष्ट न करे – ऐसी कृपा कीजिये।' भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण ने अपने भक्त की करूण पुकार सुन पाण्डवों की वंश परम्परा चलाने के लिए उत्तरा के गर्भ को अपनी माया के कवच से ढक दिया।

यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है और उसके निवारण का कोई उपाय भी नहीं है, फिर भी भगवान श्रीकृष्ण के तेज के सामने आकर वह शांत हो गया। इस प्रकार अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा गे गर्भ में परीक्षित की रक्षा कर जब भगवान श्रीकृष्ण द्वारिका जाने लगेष तब पाण्डु पत्नी कुन्ती ने अपने पुत्रों तथा द्रौपदी के साथ भगवान श्री कृष्ण की बड़े मधुर शब्दों में इस प्रकार स्तुति कीः

'हे प्रभो ! आप सभी जीवों के बाहर और भीतर एकरस स्थित हैं, फिर भी इन्द्रियों और वृत्तियों से देखे नहीं जाते क्योंकि आप प्रकृति से परे आदिपुरुष परमेश्वर हैं। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करती हूँ। इन्द्रियों से जो कुछ जाना जाता है, उसकी तह में आप ही विद्यमान रहते हैं

और अपनी ही माया के पर्दे से अपने को ढके रहते हैं। मैं अबोध नारी आप अविनाशी पुरुषोत्तम को भला, कैसे जान सकती हूँ? अनुक्रम

हे लीलाधर ! जैसे मूढ लोग दूसरा भेष धारण किये हुए नट को प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं पहचान सकते, वैसे ही आप दिखते हुए भी नहीं दिखते। आप शुद्ध हृदय वाले, विचारशील जीवन्मुक्त परमहंसो के हृदय में अपनी प्रेममयी भक्ति का सृजन करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं? आप श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्दगोप लाडले लाल गोविन्द को हमारा बारम्बार प्रणाम है।

जिनकी नाभि से ब्रह्मा का जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जो सुन्दर कमलों की माला धारण करते हैं, जिनके नेत्र कमल के समान विशाल और कोमल हैं, जिनके चरणकमलों में कमल का चिह्न है, ऐसे श्रीकृष्ण को मेरा बार-बार नमस्कार है। हृषिकेष ! जैसे आपने दुष्ट कंस के द्वारा कैद की हुई और चिरकाल से शोकग्रस्त देवकी रक्षा की थी, वैसे ही आपने मेरी भी पुत्रों के साथ बार-बार विपत्तियों से रक्षा की है। आप ही हमारे स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान हैं। श्रीकृष्ण ! कहाँ तक गिनाऊँ? विष से, लाक्षागृह की भयानक आग से, हिडिम्ब आदि राक्षसों की दृष्टि से, दुष्टों की द्यूत-सभा से, वनवास की विपत्तियों से और अनेक बार के युद्धों में अनेक महारथियों के शस्त्रास्त्रों से और अभी-अभी इस अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से भी आपने ही हमारी रक्षा की है।

विपदः सन्तु न शश्वत्तत्र तत्र जगद् गुरो।

भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्।।

हे जगदगुरो ! हमारे जीवन में सर्वदा पग-पग पर विपत्तियाँ आती रहें, क्योंकि विपत्तियों में ही निश्चित रूप से आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं आना पड़ता। अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 1.8.25)

ऊँचे कुल में जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्ति के कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता, क्योंकि आप तो उन लोगों को दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं। आप निर्धनों के परम धन हैं। माया का प्रपंच आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता।

आप अपने-आप में ही विहार करने वाले एवं परम शांतस्वरूप हैं। आप ही कैवल्य मोक्ष के अधिपति है। मैं आपको अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियन्ता, कालरूप, परमेश्वर समझती हूँ और बारम्बार नमस्कार करती हूँ। संसार के समस्त पदार्थ और प्राणी आपस में टकरा कर विषमता के कारण परस्पर विरूद्ध हो रहे हैं, परंतु आप सबमें समान रूप से विचर रहे हैं। भगवन् ! आप जब मनुष्यों जैसी लीला करते हैं, तब आप क्या करना चाहते हैं यह कोई नहीं जानता। आपका कभी कोई न प्रिय है और न अप्रिय। आपके सम्बन्ध में लोगों की बुद्धि ही विषम हुआ करती है। आप विश्व के आत्मा हैं, विश्वरूप हैं। न आप जन्म लेते हैं और न कर्म करते हैं। फिर भी पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जलचर आदि में आप जन्म लेते हैं और उन योनियों के अनुरूप आपने दूध की मटकी फोड़कर यशोदा मैया को खिजा दिया था और उन्होंने आपको बाँधने के लिए हाथ में रस्सी ली थी, तब आपकी आँखों में आँसू छलक आये थे, काजल कपोलों पर बह चला था, नेत्र चंचल हो रहे थे और भय की भावना से आपने अपने मुख को नीचे की ओर झुका लिया था ! आपकी उस दशा का, लीला-छवि का ध्यान करके मैं मोहित हो जाती हूँ। भला, जिससे भय भी भय मानता है, उसकी यह दशा !

आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया है, इसका कारण बतलाते हुए कोई-कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जैसे मलयाचल की कीर्ति का विस्तार करने के लिए उसमें चंदन प्रकट होता, वैसे ही अपने प्रिय भक्त पुण्यश्लोक राजा यदु की कीर्ति का विस्तार करने के लिए ही आपने उनके वंश में अवतार ग्रहण किया है। दूसरे लोग यों कहते हैं कि वासुदेव और देवकी ने पूर्व जन्म में (सुतपा और पृश्नि के रूप में) आपसे यही वरदान प्राप्त किया था, इसीलिए आप अजन्मा होते हुए भी जगत के कल्याण और दैत्यों के नाश के लिए उनके पुत्र बने हैं। कुछ और लोग यों कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्यों के अत्यंत भार से समुद्र में डूबते हुए जहाज की तरह डगमगा रही थी, पीड़ित हो रही थी, तब ब्रह्मा की प्रार्थना से उसका भार उतारने के लिए ही आप प्रकट हुए। कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जो लोग इस संसार में अज्ञान, कामना और कर्मों के बंधन में जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं, उन लोगों के लिए श्रवण और स्मरण करने योग्य लीला करने के विचार से ही आपने अवतार ग्रहण किया है। भक्तजन बार-बार आपके चरित्र का श्रवण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनंदित होते रहते हैं, वे ही अविलम्ब आपके उन चरणकमलों के दर्शन कर पाते हैं, जो जन्म-मृत्यु के प्रवाह को सदा के लिए रोक देते हैं।

भक्तवांछा कल्पतरु प्रभो! क्या अब आप अपने आश्रित और सम्बन्धी को छोड़कर जाना चाहते हैं? आप जानते हैं कि आपके चरणकमलों के अतिरिक्त हमें और किसी का सहारा नहीं है। पृथ्वी के राजाओं के तो हम यों ही विरोधी हो गये हैं। जैसे जीव के बिना इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं, वैसे ही आपके दर्शन बिना यदुवंशियों के और हमारे पुत्र पाण्डवों के नाम तथा रूप का

अस्तित्व ही क्या रह जाता है। गदाधर ! आपके विलक्षण चरणचिह्नों से चिह्नित यह कुरुजांगल देश की भूमि आज जैसी शोभायमान हो रही है, वैसी आपके चले जाने के बाद न रहेगी। आपकी दृष्टि के प्रभाव से ही यह देश पकी हुई फसल तथा लता-वृक्षों से समृद्ध हो रहा है। ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपकी दृष्टि से ही वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं। आप विश्व के स्वामी हैं, विश्व के आत्मा हैं और विश्वरूप हैं। यदुवंशियों और पाण्डवों में मेरी बड़ी ममता हो गयी है। आप कृपा करके स्वजनों के साथ जोड़े हुए इस स्नेह की दृढ़ फाँसी को काट दीजिये। श्रीकृष्ण ! जैसे गंगा की अखण्ड धारा समुद्र में गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरंतर प्रेम करती रहे। अनुक्रम

श्रीकृष्ण ! अर्जुन के प्यारे सखा, यदुवंशशिरोमणे ! आप पृथ्वी के भाररूप राजवेशधारी दैत्यों को जलाने के लिए अग्निरूप है। आपकी शक्ति अनन्त है। गोविन्द ! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओं का दुःख मिटाने के लिए ही है। योगेश्वर ! चराचर के गुरु भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ।

(श्रीमद् भागवतः 1.8.18.43)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

शुकदेवजी द्वारा स्तुति

उत्तरानन्दन राजा परीक्षित ने भगवत्स्वरूप मुनिवर शुकदेवजी से सृष्टिविषयक प्रश्न पूछा कि अनन्तशक्ति परमात्मा कैसे सृष्टि की उत्पत्ति, रक्षा एवं संहार करते हैं और वे किन-किन शक्तियों का आश्रय लेकर अपने-आपको ही खिलौने बनाकर खेलते हैं? इस प्रकार परीक्षित द्वारा भगवान की लीलाओं को जानने की जिज्ञासा प्रकट करने पर वेद और ब्रह्मतत्त्व के पूर्ण मर्मज्ञ शुकदेवजी लीलापुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण की मंगलाचरण के रूप में इस प्रकार से स्तुति करते हैं-

'उन पुरुषोत्तम भगवान के चरणकमलों में मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं, जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की लीला करने के लिए सत्त्व, रज तथा तमोगुण रूप तीन शक्तियों को स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर का रूप धारण करते हैं। जो समस्त चर-अचर प्राणियों

के हृदय में अंतर्यामीरूप से विराजमान हैं, जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धि का मार्ग बुद्धि के विषय नहीं हैं, जो स्वयं अनन्त हैं तथा जिनकी महिमा भी अनन्त है, हम पुनः बार-बार उनके चरणों में नमस्कार करते हैं। जो सत्पुरुषों का दुःख मिटाकर उन्हें अपने प्रेम का दान करते हैं, दुष्टों की सांसारिक बढ़ती रोककर उन्हें मुक्ति देते हैं तथा जो लोग परमहंस आश्रम में स्थित हैं, उन्हें उनकी भी अभीष्ट वस्तु का दान करते हैं। क्योंकि चर-अचर समस्त प्राणी उन्हीं की मूर्ति हैं, इसलिए किसी से भी उनका पक्षपात नहीं है। जो बड़े ही भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधन करने वाले लोग जिनकी छाया भी नहीं छू सकते; जिनके समान भी किसी का ऐश्वर्य नहीं है, फिर उससे अधिक तो हो ही कैसे सकता है तथा ऐसे ऐश्वर्य से युक्त होकर जो निरन्तर ब्रह्मस्वरूप अपने धाम में विहार करते रहते हैं, उन भगवान श्रीकृष्ण को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वंदल, श्रवण और पूजन जीवों के पापों को तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान श्रीकृष्ण को बार-बार नमस्कार है। अनुक्रम

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात् संगं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः।

विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः।।

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमंगलाः।

क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः।।

विवेकी पुरुष जिनके चरणकमलों की शरण लेकर अपने हृदय से इस लोक और परलोक की आसक्ति निकाल डालते हैं और बिना किसी परिश्रम के ही ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं, उन मंगलमय कीर्तिवाले भगवान श्रीकृष्ण को अनेक बार नमस्कार है। बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मंत्रवेत्ता जब तक अपनी साधनाओं को तथा अपने-आपको उनके चरणों में समर्पित नहीं कर देते, तब तक उन्हें कल्याण की प्राप्ति नहीं होती। जिनके प्रति आत्मसमर्पण की ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान को बार-बार नमस्कार है।

(श्रीमद् भागवतः 2.4.16.17)

किरात, हूण, आंध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन और खस आदि नीच जातियाँ तथा दूसरे पापी जिनके शरणागत भक्तों की शरण ग्रहण करने से ही पवित्र हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान भगवान को बार-बार नमस्कार है।

वे ही भगवान ज्ञानियों के आत्मा हैं, भक्तों के स्वामी हैं, कर्मकाण्डियों के लिए वेदमूर्ति हैं। ब्रह्मा, शंकर आदि बड़े-बड़े देवता भी अपने शुद्ध हृदय से उनके स्वरूप का चिंतन करते और आश्चर्यचकित होकर देखते रहते हैं। वे मुझ पर अपने अनुग्रह की, प्रसाद की वर्षा करें।

जो समस्त सम्पत्तियों की स्वामिनी लक्ष्मीदेवी के पति हैं, समस्त यज्ञों के भोक्ता एवं फलदाता है, प्रजा के रक्षक हैं, सबके अंतर्यामी और समस्त लोकों के पालनकर्ता हैं तथा पृथ्वीदेवी के स्वामी हैं, जिन्होंने यदुवंश में प्रकट होकर अंधक, वृष्णि एवं यदुवंश के लोगों की रक्षा की है तथा जो उन लोगों के एकमात्र आश्रय रहे हैं – वे भक्तवत्सल, संतजनों के सर्वस्व श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों। विद्वान पुरुष जिनके चरणकमलों के चिंतनरूप समाधि से शुद्ध हुई बुद्धि के द्वारा आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करते हैं तथा उनके दर्शन के अनन्तर अपनी-अपनी मति और रूचि के अनुसार जिनके स्वरूप का वर्णन करते रहते हैं, वे प्रेम और मुक्ति को लुटाने वाले भगवान श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों। जिन्होंने सृष्टि के समय ब्रह्मा के हृदय में पूर्वकाल की स्मृति जाग्रत करने के लिए ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी को प्रेरित किया और वे अपने अंगों के सहित वेद के रूप में उनके मुख से प्रकट हुई, वे ज्ञान के मूल कारण भगवान मुझ पर कृपा करें, मेरे हृदय में प्रकट हों। भगवान ही पंचमहाभूतों से इन शरीरों का निर्माण करके इनमें जीवरूप से शयन करते हैं और पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच, प्राण और एक मन – इन सोलह कलाओं से युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयों का भोग करते हैं। वे सर्वभूतमय भगवान मेरी वाणी को अपने गुणों से अलंकृत कर दें। संतपुरुष जिनके मुखकमल से मकरन्द के समान झरती हुई ज्ञानमयी सुधा का पान करते रहते हैं, उन वासुदेवावतार सर्वज्ञ भगवान व्यास के चरणों में मेरा बार-बार नमस्कार है।' अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 2.4.12-24)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ब्रह्मा जी द्वारा स्तुति

सृष्टि से पूर्व यह सम्पूर्ण विश्व जल में डूबा हुआ था। उस समय एकमात्र श्रीनारायण देव शेषशय्या पर लेटे हुए थे। एक सहस्र चतुर्युगपर्यन्त जल में शयन करने के अनन्तर उन्हीं के द्वारा नियुक्त उनकी कालशक्ति ने उन्हें जीवों के कर्मों की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित किया। जिस समय भगवान की दृष्टि अपने में निहित लिंग शरीरादि सूक्ष्म तत्त्व पर पड़ी, तब वह सूक्ष्म तत्त्व कालाश्रित रजोगुण से क्षुभित होकर सृष्टि-रचना के निमित्त कमलकोश के रूप में सहसा ऊपर उठा। कमल पर ब्रह्मा जी विराजमान थे। वे सोचने लगेः 'इस कमल की कर्णिका पर बैठा हुआ मैं

कौन हूँ? यह कमल भी बिना किसी अन्य आधार के जल में कहाँ से उत्पन्न हो गया? इसके नीचे अवश्य कोई वस्तु होनी चाहिए, जिसके आधार पर यह स्थित है।' अपने उत्पत्ति-स्थान को खोजते-खोजते ब्रह्माजी को बहुत काल बीत गया। अन्त में प्राणवायु को धीरे-धीरे जीतकर चित्त को निःसंकल्प किया और समाधि में स्थित हो गये। तब उन्होंने अपने उस अधिष्ठान को, जिसे वे पहले खोजने पर भी नहीं देख पाये थे, अपने ही अंतःकरण में प्रकाशित होते देखा तथा श्रीहरि में चित्त लगाकर उन परम पूजनीय प्रभु की स्तुति करने लगेः

'आप सर्वदा अपने स्वरूप के प्रकाश से ही प्राणियों के भेद भ्रमरूप अंधकार का नाश करते रहते हैं तथा ज्ञान के अधिष्ठान साक्षात् परम पुरुष हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के निमित्त से जो माया की लीला होती है, वह आपका ही खेल है, अतः आप परमेश्वर को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।

ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये।।

जो लोग प्राणत्याग करते समय आपके अवतार, गुण और कर्मों को सूचित करने वाले देवकीनन्दन, जनार्दन, कंसनिकंदन आदि नामों का विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मों के पापों से तत्काल छूटकर मायादि आवरणों से रहित ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण लेता हूँ। अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 3.9.15)

भगवन् ! इस विश्ववृक्ष के रूप में आप ही विराजमान हैं। आप ही अपनी मूल प्रकृति को स्वीकार करके जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए मेरे, अपने और महादेवजी के रूप में तीन प्रधान शाखाओं में विभक्त हुए हैं और फिर प्रजापति एवं मनु आदि शाखा-प्रशाखाओं के रूप में फैलकर बहुत विस्तृत हो गये हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भगवन् ! आपने अपनी आराधना को ही लोकों के लिए कल्याणकारी स्वधर्म बताया है, किंतु वे इस ओर से उदासीन रहकर सर्वदा विपरीत (निषिद्ध) कर्मों में लगे रहते हैं। ऐसी प्रमाद की अवस्था में पड़े हुए इन जीवों की जीवन-आशा को जो सदा सावधान रहकर बड़ी शीघ्रता से काटता रहता है, वह बलवान काल भी आपका ही रूप है; मैं उसे नमस्कार करता हूँ। यद्यपि मैं सत्यलोक का अधिष्ठाता हूँ, जो परार्द्धपर्यन्त रहने वाला और समस्त लोकों का वन्दनीय है तो भी आपके उस कालरूप से डरता रहता हूँ। उससे बचने और आपको प्राप्त करने के लिए ही मैंने बहुत समय तक तपस्या की है।

आप ही अधियज्ञरूप से मेरी इस तपस्या के साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप पूर्णकाम हैं, आपको किसी विषयसुख की इच्छा नहीं है तो भी आपने अपनी बनायी हुई धर्ममर्यादा की रक्षा के लिए पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीवयोनियों में अपनी ही इच्छा से शरीर धारण कर अनेकों लीलाएँ की हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान को मेरा नमस्कार है।

प्रभो ! आप अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश – पाँचों में से किसी के भी अधीन नहीं हैं; तथापि इस समय जो सारे संसार को अपने उदर में लीन कर भयंकर तरंगमालाओं से विक्षुब्ध प्रलयकालीन जल में अनन्तविग्रह की कोमल शय्या पर शयन कर रहे हैं, वह पूर्वकाल की कर्म परम्परा से श्रमित हुए जीवों को विश्राम देने के लिए ही है। आपके नाभिकमलरूप भवन से मेरा जन्म हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदर में समाया हुआ है। आपकी कृपा से ही मैं त्रिलोकी की रचना रूप उपकार में प्रवृत्त हुआ हूँ। इस समय योगनिद्रा का अंत हो जाने के कारण आपके नेत्रकमल विकसित हो रहे हैं आपको मेरा नमस्कार है। आप सम्पूर्ण जगत के एकमात्र सुहृद और आत्मा हैं तथा शरणागतों पर कृपा करने वाले हैं। अतः अपने जिस ज्ञान और ऐश्वर्य से आप विश्व को आनन्दित करते हैं, उसी से मेरी बुद्धि को भी युक्त करें – जिससे मैं पूर्वकल्प के समान इस समय भी जगत की रचना कर सकूँ। आप भक्तवांछाकल्पतरु हैं। अपनी शक्ति लक्ष्मीजी के सहित अनेक गुणावतार लेकर आप जो-जो अदभुत कर्म करेंगे, मेरा यह जगत की रचना करने का उद्यम भी उन्हीं में से एक है। अतः इसे रचते समय आप मेरे चित्त को प्रेरित करें, शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं सृष्टि रचनाविषयक अभिमानरूप मल से दूर रह सकूँ। प्रभो ! इस प्रलयकालीन जल में शयन करते हुए आप अनन्तशक्ति परमपुरुष के नाभि-कमल से मेरा प्रादुर्भाव हुआ है और मैं हूँ भी आपकी ही विज्ञानशक्ति अतः इस जगत के विचित्र रूप का विस्तार करते समय आपकी कृपा से मेरी वेदरूप वाणी का उच्चारण लुप्त न हो। आप अपार करुणामय पुराणपुरुष हैं। आप परम प्रेममयी मुस्कान के सहित अपने नेत्रकमल खोलिये और शेषशय्या से उठकर विश्व के उदभव के लिए अपनी सुमधुर वाणी से मेरा विषाद दूर कीजिए।' अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 3.9.14-25)

भगवान की महिमा असाधारण है। वे स्वयंप्रकाश, आनंदस्वरूप और माया से अतीत है। उन्हीं की माया में तो सभी मुग्ध हो रहे हैं परंतु कोई भी माया-मोह भगवान का स्पर्श नहीं कर सकता। ब्रह्माजी उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण को ग्वाल-बाल और बछड़ों का अपहरण कर, अपनी माया से मोहित करने चले थे। किन्तु उनको मोहित करना तो दूर रहा, वे अजन्मा होने पर भी अपनी ही माया से अपने-आप मोहित हो गये। ब्रह्माजी समस्त विद्याओं के अधिपति हैं तथापि भगवान के दिव्य स्वरूप को वे तनिक भी न समझ सके कि यह क्या है। यहाँ तक कि वे भगवान के

महिमामय रूपों को देखने में भी असमर्थ हो गये। उनकी आँखें मुँद गयीं। भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी का मोह और असमर्थता को जान कर अपनी माया का पर्दा हटा दिया। इससे ब्रह्माजी को ब्रह्मज्ञान हुआ। फिर ब्रह्माजी ने अपने चारों मुकुटों के अग्रभाग से भगवान के चरणकमलों का स्पर्श करके नमस्कार किया और आनंद के आँसुओं की धारा से उन्हें नहला दिया। बहुत देर तक वे भगवान के चरणों में ही पड़े रहे। फिर धीरे-धीरे उठे और अपने नेत्रों के आँसू पोंछे। प्रेम और मुक्ति के एकमात्र उदगम भगवान को देखकर उनका सिर झुक गया। अंजलि बाँधकर बड़ी नम्रता और एकाग्रता के साथ गदगद वाणी से वे भगवान की स्तुति करने लगेः

'प्रभो ! एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं। मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल है, इस पर पीताम्बर स्थिर बिजली के समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ शोभा पाता है, आपके गले में घुँघची की माला, कानों में मकराकृति कुण्डल तथा सिर पर मोरपंखों का मुकुट है, इन सबकी कांति से आपके मुख पर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्षः स्थल पर लटकती हुई वनमाला और नन्हीं-सी हथेली पर दही-भात का कौर, बगल में बेंत और सिंगी तथा कमर की फेंट में आपकी पहचान बतानेवाली बाँसुरी शोभा पर रही है। आपके कमल-से सुकोमल परम सुकुमार चरण और यह गोपाल बालक का सुमधुर वेष। (मैं और कुछ नहीं जानता बस, मैं तो इन्हीं चरणों पर न्योछावर हूँ।) स्वयंप्रकाश परमात्मन् ! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनों की लालसा-अभिलाषा पूर्ण करने वाला है। यह आपकी चिन्मय इच्छा का मूर्तिमान स्वरूप मुझ पर आपका साक्षात कृपा प्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करने के लिए ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पंचभूतों की रचना है?

प्रभो ! यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानंद-विग्रह की महिमा नहीं जान सकता। फिर आत्मानन्दानुभवस्वरूप साक्षात् आपकी ही महिमा को तो कोई एकाग्र मन से भी कैसे जान सकता है।

ज्ञाने प्रयासमुदापास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।

स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवांगनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्।।

प्रभो ! जो लोग ज्ञान के लिए प्रयत्न न करके अपने स्थान में ही स्थित रहकर केवल सत्संग करते हैं; यहाँ तक कि उसे ही अपना जीवन बना लेते हैं, उसके बिना जी नहीं सकते। प्रभो ! यद्यपि आप पर त्रिलोकी में कोई कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता, फिर भी वे आप पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, आप उनके प्रेम के अधीन हो जाते हैं। अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः10.15.3)

भगवन् ! आपकी भक्ति सब प्रकार के कल्याण का मूलस्रोत-उदगम है। जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं, उनको बस क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है और कुछ नहीं। जैसे, थोथी भूसी कूटने वाले को केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं।

हे अच्युत ! हे अनन्त ! इस लोक में पहले भी बहुत-से योगी हो गये हैं। जब उन्हें योगादि के द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई, तब उन्होंने अपने लौकिक और वैदिक समस्त कर्म आपके चरणों में समर्पित कर दिये। उन समर्पित कर्मों से तथा आपकी लीला-कथा से उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई। उस भक्ति से ही आपके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बड़ी सुगमता से आपके परम पद की प्राप्ति कर ली। हे अनन्त ! आपके सगुण-निर्गुण दोनों स्वरूपों का ज्ञान कठिन होने पर भी निर्गुण स्वरूप की महिमा इन्द्रियों का प्रत्याहार करके शुद्ध अंतःकरण से जानी जा सकती है। (जानने की प्रक्रिया यह है कि) विशेष आकार के परित्यागपूर्वक आत्माकार अंतःकरण का साक्षात्कार किया जाय। यह आत्माकारता घट-पटादि रूप के समान ज्ञेय नहीं है, प्रत्युत आवरण का भंगमात्र है। यह साक्षात्कार 'यह ब्रह्म है', 'मैं ब्रह्म को जानता हूँ' इस प्रकार नहीं किंतु स्वयंप्रकाश रूप से ही होता है। परंतु भगवन् ! जिन समर्थ पुरुषों ने अनेक जन्मों तक परिश्रम करके पृथ्वी का एक-एक परमाणु, आकाश के हिमकण (ओस की बूँदें) तथा उसमें चमकने वाले नक्षत्र एवं तारों तक को गिन डाला है, उनमें भी भला, ऐसा कौन हो सकता है जो आपके सगुण स्वरूप के अनन्त गुणों को गिन सके? प्रभो ! आप केवल संसार के कल्याण के लिए ही अवतीर्ण हुए हैं। सो भगवन् ! आपकी महिमा का ज्ञान तो बड़ा ही कठिन है। इसलिए जो पुरुष क्षण-क्षण पर बड़ी उत्सुकता से आपकी कृपा का ही भलीभाँति अनुभव करता रहता है और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है, उसे निर्विकार मन से भोग लेता है एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गदगद वाणी और पुलकित शरीर से अपने को आपके चरणों में समर्पित करता रहता है – इस प्रकार जीवन व्यतीत करने वाला पुरुष ठीक वैसे ही आपके परम पद का अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिता की सम्पत्ति का पुत्र ! अनुक्रम

प्रभो ! मेरी कुटिलता तो देखिये। आप अनन्त आदिपुरुष परमात्मा हैं और मेरे जैसे बड़े-बड़े मायावी भी आपकी माया के चक्र में हैं। फिर भी मैंने आप पर अपनी माया फैलाकर अपना ऐश्वर्य देखना चाहा। प्रभो ! मैं आपके सामने हूँ ही क्या। क्या आग के सामने चिनगारी की भी कुछ गिनती है? भगवन् ! मैं रजोगुण से उत्पन्न हुआ हूँ, आपके स्वरूप को मैं ठीक-ठाक नहीं जानता। इसी से अपने को आपसे अलग संसार का स्वामी माने बैठा था। मैं अजन्मा जगत्कर्ता हूँ – इस मायाकृत मोह के घने अंधकार से मैं अंधा हो रहा था। इसलिए आप यह समझकर कि

'यह मेरे ही अधीन है, मेरा भृत्य है, इस पर कृपा करनी चाहिए', मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मेरे स्वामी ! प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीरूप आवरणों से घिरा हुआ यह ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है और आपके एक-एक रोम के छिद्र में ऐसे-ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उड़ते-पड़ते रहते हैं, जैसे झरोखे की जाली में से आनेवाली सूर्य की किरणों में रज के छोटे-छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखायी पड़ते हैं। कहाँ अपने परिमाण से साढ़े तीन हाथ के शरीरवाला अत्यंत क्षुद्र मैं और कहाँ आपकी अनन्त महिमा। वृत्तियों की पकड़ में न आनेवाले परमात्मन् ! जब बच्चा माता के पेट में रहता है, तब अज्ञानवश अपने हाथ पैर पीटता है; परंतु क्या माता उसे अपराध समझती है या उसके लिए वह कोई अपराध होता है? 'है' और 'नहीं है' – इन शब्दों से कही जाने वाली कोई भी वस्तु ऐसी है क्या, जो आपकी कोख के भीतर न हो?

श्रुतियाँ कहती हैं कि जिस समय तीनों लोक प्रलयकालीन जल में लीन थे, उस समय उस जल में स्थित श्रीनारायण के नाभिकमल से ब्रह्म का जन्म हुआ। उनका यह कहना किसी प्रकार असत्य नहीं हो सकता। तब आप ही बतलाइये, प्रभो ! क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ?

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी।

नारायणोङ्गं नरभूजलायातच्चापि सत्यं न तदैव माया।।

प्रभो ! आप समस्त जीवों के आत्मा हैं। इसलिए आप नारायण (नार-जीव और अयन-आश्रय) हैं। आप समस्त जगत के और जीवों के अधीश्वर है, इसलिए आप नारायण (नार-जीव और अयन-प्रवर्तक) हैं। आप समस्त लोकों के साक्षी हैं, इसलिए भी नारायण (नार-जीव और अयन-जानने वाला) है। नर से उत्पन्न होने वाले जल में निवास करने के कारण जिन्हें नारायण (नार-जल और अयन-निवासस्थान) कहा जाता है, वे भी आपके एक अंश ही हैं। वह अंशरूप से दिखना भी सत्य नहीं है, आपकी माया ही है।

(श्रीमद् भागवतः 10.14.14)

यदि आपका वह विराट स्वरूप सचमुच उस समय जल में ही था तो मैंने उसी समय उसे क्यों नहीं देखा, जब कि मैं कमलनाल के मार्ग से उसे सौ वर्ष तक जल में ढूँढता रहा? फिर मैंने जब तपस्या की, तब उसी समय मेरे हृदय में उसका दर्शन कैसे हो गया? और फिर कुछ ही क्षणों में वह पुनः क्यों नहीं दिखा, अंतर्धान क्यों हो गया? माया का नाश करने वाले प्रभो ! दूर की बात कौन करे, अभी इसी अवतार में आपने इस बाहर दिखने वाले जगत को अपने पेट में ही दिखला दिया, जिसे देखकर माता यशोदा चकित हो गयी थी। इससे यही तो सिद्ध होता है कि

यह सम्पूर्ण विश्व केवल आपकी माया-ही-माया है। जब आपके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जैसा बाहर दिखता है वैसा ही आपके उदर में भी दिखा, तब क्या यह सब आपकी माया के बिना ही आपमें प्रतीत हुआ? अवश्य ही आपकी लीला है। उस दिन की बात जाने दीजिए, आज की ही लीजिए। क्या आज आपने मेरे सामने अपने अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व को अपनी माय का खेल नहीं दिखलाया है? पहले आप अकेले थे। फिर सम्पूर्ण ग्वाल-बाल, बछड़े और छड़ी-छीके भी आप ही हो गये। उसके बाद मैंने देखा कि आपके वे सब रूप चतुर्भुज हैं और मेरे सहित सब-के-सब तत्त्व उनकी सेवा कर रहे हैं। आपने अलग-अलग उतने ही ब्रह्माण्डों का रूप भी धारण कर लिया था, परंतु अब आप केवल अपरिमित माया, अद्वितीय ब्रह्मरूप से ही शेष रह गये हैं। अनुक्रम

जो लोग अज्ञानवश आपके स्वरूप को नहीं जानते, उन्हीं को आप प्रकृति में स्थित जीव के रूप से प्रतीत होते हैं और उन पर अपनी माया का पर्दा डालकर सृष्टि के समय मेरे (ब्रह्मा) रूप से पालन के समय अपने (विष्णु) रूप से और संहार के समय रूद्र के रूप में प्रतीत होते हैं।

प्रभो ! आप सारे जगत के स्वामी और विधाता हैं। अजन्मा होने पर भी आपके देवता, ऋषि, पशु-पक्षी और जलचर आदि योनियों में अवतार ग्रहण करते हैं। इसलिए कि इन रूपों के द्वारा दुष्ट पुरुषों का घमण्ड तोड़ दें और सत्पुरुषों पर अनुग्रह करें। भगवन् ! आप अनन्त परमात्मा और योगेश्वर हैं? जिस समय आप अपनी माया का विस्तार करके लीला करने लगते हैं, उस समय त्रिलोकी में ऐसा कौन है, जो यह जान सके की आपकी लीला कहाँ, किसलिए, कब और कितनी है । इसलिए यह सम्पूर्ण जगत स्वप्न के समान असत्य, अज्ञानरूप और दुःख-पर दुःख देनेवाला है। आप परमानंद, परम ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त हैं। यह माया से उत्पन्न एवं विलीन होने पर भी आपमें आपकी सत्ता से सत्य के समान प्रतीत होता है। प्रभो ! आप ही एकमात्र सत्य हैं क्योंकि आप सबके आत्मा जो हैं। आप पुराणपुरुष होने के कारण समस्त जन्मादि विकारों से रहित हैं। आप स्वयंप्रकाश हैं; इसलिए देश, काल और वस्तु जो परप्रकाश हैं किसी प्रकार आपको सीमित नहीं कर सकते। आप उनके भी आदि प्रकाशक हैं। आप अविनाशी होने के कारण नित्य हैं। आपका आनंद अखण्डित है। आपमें न तो किसी प्रकार का मल है और न अभाव। आप पूर्ण एक हैं। समस्त उपाधियों से मुक्त होने के कारण आप अमृतस्वरूप हैं। आपका यह ऐसा स्वरूप समस्त जीवों का ही अपना स्वरूप है। जो गुरुरूप सूर्य से तत्त्वज्ञानरूप दिव्य दृष्टि प्राप्त कर के उससे आपको अपने स्वरूप के रूप में साक्षात्कार कर लेते हैं, वे इस झूठे संसार-सागर को मानों पार कर जाते हैं। (संसार-सागर के झूठा होने के कारण इससे पार जाना भी अविचार-दशा की दृष्टि से ही है।) जो पुरुष परमात्मा को आत्मा के रूप में नहीं जानते, उन्हें उस अज्ञान के कारण ही इस नामरूपात्मक अखिल प्रपंच की उत्पत्ति का भ्रम हो जाता है। किंतु ज्ञान होते ही इसका आत्यंतिक प्रलय हो जाता है। जैसे रस्सी में भ्रम के कारण ही साँप की

प्रतीति होती है और भ्रम के निवृत्त होते ही उसकी निवृत्ति हो जाती है। संसार सम्बन्धी बंधन और उससे मोक्ष – ये दोनों ही नाम अज्ञान से कल्पित हैं। वास्तव में ये अज्ञान के ही दो नाम हैं। ये सत्य और ज्ञानस्वरूप परमात्मा से भिन्न अस्तित्व नहीं रखते। जैसे सूर्य में दिन और रात का भेद नहीं है, वैसे ही विचार करने पर अखण्ड चित्स्वरूप केवल शुद्ध आत्मतत्त्व में न बंधन है और न तो मोक्ष। भगवन् कितने आश्चर्य की बात है कि आप हैं अपने आत्मा, पर लोग आपको पराया मानते हैं और शरीर आदि हैं पराये, किंतु उनको आत्मा मान बैठते हैं और इसके बाद आपको कहीं अलग ढूँढने लगते हैं। भला, अज्ञानी जीवों का यह कितना बड़ा अज्ञान है। हे अनन्त ! आप तो सबके अंतःकरण में ही विराजमान हैं। इसलिए संत लोग आपके अतिरिक्त जो अनुक्रम कुछ प्रतीत हो रहा है, उसका परित्याग करते हुए अपने भीतर आपको ढूँढते हैं। क्योंकि यद्यपि रस्सी में साँप नहीं है, फिर भी उस प्रतीयमान साँप को मिथ्या निश्चय किये बिना भला, कोई सत्पुरुष सच्ची रस्सी को कैसे जान सकता है?

अपने भक्तजनों के हृदय में स्वयं स्फुरित होने वाले भगवन् ! आप ज्ञान का स्वरूप और महिमा ऐसी ही है, उससे अज्ञानकल्पित जगत का नाश हो जाता है। फिर भी जो पुरुष आपके युगल चरणकमलों का तनिक सा भी कृपा प्रसाद प्राप्त कर लेता है, उससे अनुगृहीत हो जाता है, वही आपकी सच्चिदानंदमयी महिमा का तत्त्व जान सकता है। दूसरा कोई भी ज्ञान वैराग्यादि साधनरूप अपने प्रयत्न से बहुत काल तक कितना भी अनुसंधान करता रहे, वह आपकी महिमा का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए भगवन् ! मुझे इस जन्म में, दूसरे जन्म में अथवा किसी पशु-पक्षी आदि के जन्म में भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासों में से कोई एक दास हो जाऊँ और फिर आपके चरणकमलों की सेवा करूँ। मेरे स्वामी ! जगत के बड़े-बड़े यज्ञ सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके। परंतु आपने व्रज की गायों और ग्वालिनों के बछड़े एवं बालक बनकर उनके स्तनों का अमृत-सा दूध बड़े उमंग से पिया है। वास्तव में उन्हीं का जीवन सफल है, वे ही अत्यंत धन्य हैं। अहो ! नंद आदि व्रजवासी गोपों के धन्य भाग्य हैं वास्तव में उनका अहोभाग्य है, क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे सम्बन्धी और सुहृद हैं। हे अच्युत ! इन व्रजवासियों के सौभाग्य की महिमा तो अलग रही, मन आदि ग्यारह इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता के रूप में रहने वाले महादेव आदि हम लोग बड़े ही भाग्यवान हैं। क्योंकि व्रजवासियों की मन आदि ग्यारह इन्द्रियों को प्याले बनाकर हम आपके चरणकमलों का अमृत से भी मीठा, मदिरा से भी मादक मधुर मकरंद का पान करते रहते हैं। जब उसका एक-एक इन्द्रिय से पान करके हम धन्य-धन्य हो रहे हैं, तब समस्त इन्द्रियों से उसका सेवन करने वाले व्रजवासियों की तो बात ही क्या है। प्रभो ! इस व्रजभूमि के किसी वन में और विशेष करके गोकुल में किसी भी योनि में जन्म हो जाने पर आपके किसी-न-किसी प्रेमी के चरणों की धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायेगी। प्रभो ! आपके प्रेमी

व्रजवासियों का सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है। आप ही उनके जीवन के एकमात्र सर्वस्व हैं। इसलिए उनके चरणों की धूलि मिलना आपके ही चरणों की धूलि मिलना है और आपके चरणों की धूलि को तो श्रुतियाँ भी अनादि काल से अब तक ढूँढ ही रही हैं। देवताओं के भी आराध्यदेव प्रभो ! इन व्रजवासियों को इनकी सेवा के बदले में आप क्या फल देंगे? सम्पूर्ण फलों के फलस्वरूप ! आपसे बढ़कर और कोई फल तो है ही नहीं, यह सोचकर मेरा चित्त मोहित हो रहा है। आप उन्हें अपना स्वरूप भी देकर उऋण नहीं हो सकते। क्योंकि आपके स्वरूप को तो उस पूतना ने भी अपने सम्बन्धियों अघासुर, बकासुर आदि के साथ प्राप्त कर लिया, जिसका केवल वेष ही साध्वी स्त्री का था, पर जो हृदय से महान क्रूर थी। फिर जिन्होंने अपने घर, धन, स्वजन, प्रिय, शरीर, पुत्र, प्राण और मन, सब कुछ आपके ही चरणों में समर्पित कर दिया है, अनुक्रम जिनका सब कुछ आपके ही लिए है, उन व्रजवासियों को भी वही फल देकर आप कैसे उऋण हो सकते हैं। सच्चिदानंदस्वरूप श्यामसुन्दर ! तभी तक राग-द्वेष आदि दोष चोरों के समान सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं, तभी तक घर और उसके सम्बन्धी कैद की तरह सम्बन्ध के बन्धनों में बाँध रखते हैं और तभी तक मोह पैर की बेड़ियों की तरह जकड़े रखता है, जब तक जीव आपका नहीं हो जाता। प्रभो ! आप विश्व के बखेड़े से सर्वथा रहित है, फिर भी अपने शरणागत भक्तजनों को अनन्त आनंद वितरण करने के लिए पृथ्वी पर अवतार लेकर विश्व के समान ही लीला-विलास का विस्तार करते हैं।

मेरे स्वामी ! बहुत कहने की आवश्यकता नहीं। जो लोग आपकी महिमा जानते हैं, वे जानते रहें; मेरे मन, वाणी और शरीर तो आपकी महिमा जानने में सर्वथा असमर्थ हैं। सच्चिदानंद – स्वरूप श्रीकृष्ण ! आप सबके साक्षी हैं। इसलिए आप सब कुछ जानते हैं। आप समस्त जगत के स्वामी है। यह सम्पूर्ण प्रपंच आप में ही स्थित है। आपसे मैं और क्या कहूँ? अब आप मुझे स्वीकार कीजिये। मुझे अपने लोक में जाने की आज्ञा दीजिए। सबके मन-प्राण को अपनी रूप-माधुरी से आकर्षित करने वाले श्यामसुन्दर ! आप यदुवंशरूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य हैं। प्रभो ! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप समुद्र की अभिवृद्धि करने वाले चंद्रमा भी आप ही हैं। आप पाखण्डियों के धर्मरूप रात्रि का घोर अंधकार नष्ट करने के लिए सूर्य और चंद्रमा दोनों के ही समान हैं। पृथ्वी पर रहने वाले राक्षसों के नष्ट करने वाले आप चंद्रमा, सूर्य आदि आदि समस्त देवताओं के भी परम पूजनीय हैं। भगवन् ! मैं अपने जीवनभर, महाकल्पपर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ।'

(श्रीमद् भागवतः 10.14.1-40)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

देवताओं द्वारा स्तुति

ब्रह्मादिक देवताओं द्वारा विष्णु भगवान से असुरों का विनाश तथा संतों की रक्षा हेतु प्रार्थना किये जाने पर सर्वशक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण वसुदेव-देवकी के घर पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए थे। एक दिन सनकादिकों, देवताओं और प्रजापतियों के साथ ब्रह्माजी, भूतगणों के साथ सर्वेश्वर महादेवजी, मरुदगणों के साथ देवराज इन्द्र, आदित्यगण, आठों वसु, अश्विनी कुमार, ऋभु, अंगिरा के वंशज ऋषि, ग्यारह रूद्र, विश्वेदेव, साध्यगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर और किन्नर आदि देवता मनुष्य सा मनोहर वेष धारण करने वाले और अपने श्यामसुन्दर विग्रह से सभी लोगों का मन अपनी ओर खींचकर रमा लेने वाले भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन करने द्वारिकापुरी में आते हैं तब वे प्रभु श्रीकृष्ण की इस प्रकार से स्तुति करते हैं-

'स्वामी ! कर्मों के विकट फंदों से छूटने की इच्छावाले मुमुक्षुजन भक्तिभाव से अपने हृदय में जिन चरणकमलों का चिंतन करते रहते हैं। आपके उन्हीं चरणकमलों को हम लोगों ने अपनी बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन और वाणी से साक्षात् नमस्कार किया है। अहो ! आश्चर्य है ! अजित ! आप मायिक रज आदि गुणों में स्थित होकर इस अचिन्त्य नाम-रूपात्मक प्रपंच की त्रिगुणमयी माया के द्वारा अपने-आप में ही रचना करते हैं, पालन करते और संहार करते हैं। यह सब करते हुए भी इन कर्मों से से आप लिप्त नहीं होते हैं; क्योंकि आप राग द्वेषादि दोषों से सर्वथा मुक्त हैं और अपने निरावरण अखण्ड स्वरूपभूत परमानन्द में मग्न रहते हैं। स्तुति करने योग्य परमात्मन् ! जिन मनुष्यों की चित्तवृत्ति राग-द्वेषादि से कलुषित है, वे उपासना, वेदाध्यान, दान, तपस्या और यज्ञ आदि कर्म भले ही करें, परंतु उनकी वैसी शुद्धि नहीं हो सकती, जैसी श्रवण के द्वारा संपुष्ट शुद्धान्तःकरण सज्जन पुरुषों की आपकी लीलाकथा, कीर्ति के विषय में दिनोंदिन बढ़कर परिपूर्ण होने वाली श्रद्धा से होती है। मननशील मुमुक्षुजन मोक्षप्राप्ति के लिए अपने प्रेम से पिघले हुए हृदय क द्वारा जिन्हें लिये-लिये फिरते हैं, पांचरात्र विधि से उपासना करने वाले भक्तजन समान ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध – इस चतुर्व्यूह के रूप में जिनका पूजन करते हैं और जितेन्द्रिय और धीर पुरुष स्वर्गलोक का अतिक्रमण करके भगवद्धाम की प्राप्ति के लिए तीनों वेदों के द्वारा बतलायी हुई विधि से अपने संयत हाथों में हविष्य लेकर यज्ञकुण्ड में आहुति देते और उन्हीं का चिंतन करते हैं। आपकी आत्मस्वरूपिणी माया के जिज्ञासु योगीजन हृदय के अन्तर्देश में दहरविद्या आदि के द्वारा आपके चरणकमलों का ही ध्यान करते हैं और आपके बड़े-बड़े प्रेमी भक्तजन उन्हीं को अपनी परम इष्ट आराध्यदेव मानते

हैं। प्रभो ! आपके वे ही चरणकमल हमारी समस्त अशुभ वासनाओं, विषय-वासनाओं को भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप हों। वे हमारे पाप-तापों को अग्नि के समान भस्म कर दें। प्रभो ! यह भगवती लक्ष्मी आपके वक्षःस्थल पर मुरझायी हुई बासी वनमाला से भी सौत की तरह स्पर्धा रखती हैं। फिर भी आप उनकी परवाह न कर भक्तों के द्वारा इस बासी माला से की हुई पूजा भी प्रेम से स्वीकार करते हैं; ऐसे भक्तवत्सल प्रभु के चरणकमल सर्वदा हमारी विषय-वासनाओं को जलाने वाले अग्निस्वरूप हों। अनन्त ! वामनावतार में दैत्य राज बलि की दी हुई पृथ्वी को नापने के लिए जब आपने पग उठाया था और वह सत्यलोक में पहुँच गया था, तब यह ऐसा जान पड़ता था मानों, कोई बहुत बड़ा विजयध्वज हो। ब्रह्माजी द्वारा चरण पखारने के बाद उससे गिरती हुई गंगाजी के जल की तीन धाराएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानों, ध्वज में लगी हुई तीन पताकाएँ फहरा नहीं हों। उन्हें देखकर असुरों की सेना भयभीत हो गयी थी और देवसेना निर्भय। आपका यह चरणकमल साधुस्वभाव के पुरुषों के लिए आपके धाम वैकुण्ठलोक की प्राप्ति का और दुष्टों के लिए अधोगति का कारण है। भगवन् ! आपका वही पादपद्म हम भजन करने वालों के सारे पाप-ताप धो-बहा दे। ब्रह्मा आदि जितने भी शरीरधारी हैं, वे सत्व, रज, तम – इन तीनों अनुक्रम गुणों के परस्पर विरोधी त्रिविध भावों की टक्कर से जीते-मरते रहते हैं। वे सुख-दुःख के थपेड़ों से बाहर नहीं हैं और ठीक वैसे ही आपके वश में हैं, जैसे नथे हुए बैल अपने स्वामी के वश में होते हैं। आप उनके लिए भी कालस्वरूप हैं। उनके जीवन का आदि, मध्य और अंत आपके ही अधीन है। इतना ही नहीं, आप प्रकृति और पुरुष से भी परे स्वयं पुरुषोत्तम हैं। आपके चरणकमल हम लोगों का कल्याण करें।

प्रभो ! आप इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के परम कारण हैं; क्योंकि शास्त्रों ने ऐसा कहा है कि आप प्रकृति, पुरुष और महत्तत्व के भी नियंत्रण करने वाले काल हैं। शीत, ग्रीष्म और वर्षाकालरूप तीन नाभियों वाले संवत्सर के रूप में सबको क्षय की ओर ले जाने वाले काल आप ही हैं। आपकी गति अबाध और गम्भीर है। आप स्वयं पुरुषोत्तम हैं। यह पुरुष आपसे शक्ति प्राप्त करके अमोघवीर्य हो जाता है और फिर माया के साथ संयुक्त होकर विश्व के महत्तत्वरूप गर्भ का स्थापन करता है। इसके बाद वह महत्तत्व त्रिगुणमयी माया का अनुसरण करके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और मनरूप सात आवरणों (परतों) वाले इस सुवर्ण वर्ण ब्रह्माण्ड की रचना करता है। इसलिए हृषिकेश ! आप समस्त चराचर जगत के अधीश्वर हैं। यही कारण है कि माया की गुण-विषमता के कारण बनने वाले विभिन्न पदार्थों का उपभोग करते हुए भी आप उनमें लिप्त नहीं होते। यह केवल आपकी ही बात है। आपके अतिरिक्त दूसरे तो स्वयं उनका त्याग करके भी उन विषयों से डरते रहते हैं। सोलह हजार से अधिक रानियाँ आपके साथ रहती हैं। वे सब अपनी मंद-मंद मुस्कान और तिरछी चितवन युक्त मनोहर भौंहों के इशारे से और सुर-ताल-आलापों से प्रौढ़ सम्मोहक कामबाण चलाती हैं और कामकला की

विविध रीतियों से आपका मन आकर्षित करना चाहती हैं; परंतु फिर भी वे अपने परिपुष्ट कामबाणों से आपका मन तनिक भी न डिगा सकीं, वे असफल ही रहीं।

विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम्।

आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमंगसंगैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति।।

आपने त्रिलोकी की पापराशि को धो बहाने के लिए दो प्रकार की पवित्र नदियाँ बहा रखी हैं – एक तो आपकी अमृतमयी लीला से भरी कथा-नदी और दूसरी आपके पाद-प्रक्षालन के जल से भरी गंगाजी। अतः सत्संगसेवी विवेकीजन कानों के द्वारा आपकी कथा-नदी में और शरीर के द्वारा गंगाजी में गोता लगाकर दोनों ही तीर्थों का सेवन करते हैं और अपने पाप मिटा देते हैं।'

(श्रीमद् भागवतः 11.6.7-11)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ध्रुव द्वारा स्तुति

ध्रुव को अपने पिता उत्तानपाद की गोद में बैठने का यत्न करते हुए देख क्रोधित हुई सुरुचि ने जब ध्रुव से ये वचन कहे 'यदि तुझे राजसिंहासन की इच्छा है तो तपस्या करके परम-पुरुष अनुक्रम श्रीनारायण की आराधना कर और उनकी कृपा से मेरे गर्भ में आकर जन्म ले।' तब बालक ध्रुव माता सुनीति के यह समझाने पर कि 'जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटने की इच्छा करने वाले मुमुक्षु लोग निरंतर प्रभु के चरणकमलों के मार्ग की खोज किया करते हैं। तू स्वधर्मपालन से पवित्र हुए अपने चित्त में श्रीपुरुषोत्तम भगवान को बिठा ले तथा अन्य सबका चिन्तन छोड़कर केवल उन्हीं का भजन कर। ध्रुव प्रभुप्राप्ति के लिए घर से निकल पड़ते हैं। रास्ते में देवर्षि नारद के मिलने पर वे उनसे 'प्रभु की प्राप्ति कैसे हो?', 'प्रभु का ध्यान कैसे करूँ?' इस प्रकार के प्रश्न पूछते हैं। नारदजी पहले तो उनकी प्रभुभक्ति के प्रति दृढ़ता, तत्परता एवं परिपक्वता की परीक्षा लेते हैं। तदुपरान्त दया के सागर, सर्वाधार भगवान श्रीकृष्ण के सलोने, साँवले स्वरूप का वर्णन कर द्वादशाक्षर मंत्र **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय** का जप करने के लिए कहते हैं। बालक ध्रुव नारदजी के उपदेशानुसार अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर एवं प्राणों को रोककर, एकाग्र चित्त व अनन्य बुद्धि से विश्वात्मा श्रीहरि के ध्यान में डूब जाते हैं परंतु जिस समय उन्होंने महदादि सम्पूर्ण तत्वों के आधार तथा प्रकृति और पुरुष के भी अधीश्वर परब्रह्म की धारणा की, उस समय तीनों लोक उनके तेज को न सह सकने के कारण काँप उठे। तीव्र

योगाभ्यास से एकाग्र हुई बुद्धि के द्वारा भगवान की बिजली के समान देदीप्यमान जिस मूर्ति का वे अपने हृदयकमल में ध्यान कर रहे थे, वह सहसा विलीन हो गयी। इससे घबराकर उन्होंने ज्यों ही नेत्र खोले कि भगवान के उसी रूप को बाहर अपने सामने खड़ा पाया।

प्रभु के दर्शन पाकर बालक ध्रुव को कुतूहल हुआ, वे प्रेम में अधीर हो गये। उन्होंने पृथ्वी पर दण्ड के समान लोटकर उन्हें प्रणाम किया। फिर वे इस प्रकार प्रेमभरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे मानों, नेत्रों से उन्हें पी जायेंगे, मुख से चूम लेंगे और भुजाओं में कस लेंगे।

वे हाथ जोड़े प्रभु के सामने खड़े थे और उनकी स्तुति करना चाहते थे, परंतु स्तुति किस प्रकार करें यह नहीं जानते थे। सर्वान्तर्यामी हरि उनके मन की बात जान गये। उन्होंने कृपापूर्वक अपने वेदमय शंख को उनके गाल से छुआ दिया। शंख का स्पर्श होते ही ध्रुव को वेदमयी दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी और जीव तथा ब्रह्मा के स्वरूप का भी निश्चय हो गया। वे अत्यंत भक्तिभाव से धैर्यपूर्वक विश्वविख्यात कीर्तिमान श्रीहरि की स्तुति करने लगेः

'प्रभो ! आप सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। आप ही मेरे अंतःकरण में प्रवेश कर अपने तेज से मेरी इस सोयी हुई वाणी को सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों एवं प्राणों को भी चेतनता देते हैं। मैं आप अंतर्यामी भगवान को प्रणाम करता हूँ।

भगवन् ! आप एक ही हैं, परंतु अपनी अनंत गुणमयी मायाशक्ति से इस महदादि सम्पूर्ण प्रपंच को रचकर अंतर्यामीरूप से उसमें प्रवेश कर जाते हैं और फिर इसके इन्द्रियादि असत् गुणों में उनके अधिष्ठातृ-देवताओं के रूप में स्थित होकर अनेक रूप भासते हैं, ठीक वैसे ही जैसे तरह-तरह की लकड़ियों में प्रकट हुई आग अपनी उपाधियों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में भासती है। अनुक्रम नाथ ! सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने भी आपकी शरण लेकर आपके दिए हुए ज्ञान के प्रभाव से ही इस जगत को सोकर उठे हुए पुरुष के समान देखा था। दीनबंधो ! उन्हीं आपके चरणतल का मुक्त पुरुष भी आश्रय लेते हैं, कोई भी कृतज्ञ पुरुष उन्हें कैसे भूल सकता है?

प्रभो ! इन शवतुल्य शरीरों के द्वारा भोगा जाने वाला, इन्द्रिय और विषयों के संसर्ग से उत्पन्न सुख तो मनुष्यों को नरक में भी मिल सकता है। जो लोग इस विषय सुख के लिए लालायित रहते हैं और जो जन्म मरण के बंधन से छुड़ा देने वाले कल्पतरूस्वरूप आपकी उपासना भगवत्प्राप्ति के सिवाय किसी अन्य उद्देश्य से करते हैं, उनकी बुद्धि अवश्य ही आपकी माया के द्वारा ठगी गयी है। नाथ ! आपके चरणकमलों का ध्यान करने से और आपके भक्तों के पवित्र चरित्र सुनने से प्राणियों को जो आनन्द प्राप्त होता है, वह निजानंदस्वरूप ब्रह्म में भी नहीं

मिल सकता। फिर जिन्हें काल की तलवार काट डालती है, उन स्वर्गीय विमानों से गिरने वाले पुरुषों को तो वह सुख मिल ही कैसे सकता है।

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसंगो भूयादनन्त महतामलाशयानाम्।

येनांजसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद् गुणकथामृतपानमत्तः।।

अनन्त परमात्मन् ! मुझे तो आप उन विशुद्ध हृदय महात्मा भक्तों का संग दीजिए, जिनका आप में अविच्छिन्न भक्तिभाव है, उनके संग में मैं आपके गुणों और लीलाओं की कथा-सुधा को पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही इस अनेक प्रकार के दुःखों से पूर्ण भयंकर संसार-सागर के उस पार पहुँच जाऊँगा।

(श्रीमद् भागवतः 4.9.11)

कमलनाथ प्रभो ! जिनका चित्त आपके चरणकमल की सुगंध से लुभाया हुआ है, उन महानुभावों का जो लोग संग करते हैं वे अपने इस अत्यंत प्रिय शरीर और इसके सम्बन्धी पुत्र, मित्र, गृह और स्त्री आदि की सुध भी नहीं लेते। अजन्मा परमेश्वर ! मैं तो पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी, सरीसृप (सर्पादि रेंगने वाले जंतु), देवता, दैत्य और मनुष्य आदि से परिपूर्ण तथा महदादि अनेकों कारणों से सम्पादित आपके इस सदसदात्मक स्थूल विश्वरूप को ही जानता हूँ; इससे परे जो आपका परम स्वरूप है, जिसमें वाणी की गति नहीं है उसका मुझे पता नहीं है।

भगवन् ! कल्प का अंत होने पर योगनिद्रा में स्थित जो परम पुरुष इस सम्पूर्ण विश्व को अपने उदर में लीन करके शेषजी के साथ उन्हीं की गोद में शयन करते हैं तथा जिनके नाभि-समुद्र से प्रकट हुए सर्वलोकमय सुवर्ण वर्ण कमल से परम तेजोमय ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, वे भगवान आप ही हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

प्रभो ! आप अपनी अखण्ड चिन्मयी दृष्टि से बुद्धि की सभी अवस्थाओं के साक्षी हैं तथा नित्यमुक्त, शुद्धसत्त्वमय, सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, षडैश्वर्य-सम्पन्न एवं तीनों गुणों के अधीश्वर हैं। आप जीव से सर्वथा भिन्न हैं तथा संसार की स्थिति के लिए यज्ञाधिष्ठाता विष्णुरूप से विराजमान हैं। अनुक्रम

आपसे ही विद्या-अविद्या आदि विरुद्ध गतियोंवाली अनेकों शक्तियाँ धारावाहिक रूप से निरंतर प्रकट होती रहती हैं। आप जगत के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनंदमय निर्विकार ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपकी शरण हूँ। भगवन् ! आप परमानंदमूर्ति हैं, जो लोग ऐसा समझकर

निष्कामभाव से आपका निरन्तर भजन करते हैं, उनके लिए राज्यादि भोगों की अपेक्षा आपके चरणकमलों की प्राप्ति ही भजन का सच्चा फल है। स्वामिन् ! यद्यपि बात ऐसी ही है तो भी जैसे गौ अपने तुरंत के जन्मे हुए बछड़े को दूध पिलाती है और व्याघ्रादि से बचाती रहती हैं, उसी प्रकार आप भी भक्तों पर कृपा करने के लिए निरंतर विकल रहने के कारण हम जैसे सकाम जीवों की भी कामना पूर्ण करके उनकी संसार-भय से रक्षा करते रहते हैं।'

(श्रीमद् भागवतः 4.9.6-17)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

महाराज पृथु द्वारा स्तुति

जब राजा पृथु सौवां अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, तब इन्द्र ने ईर्ष्यावश उनके यज्ञ का घोड़ा हर लिया। इन्द्र की इस कुचाल का पता लगने पर महाराज पृथु इन्द्र का वध करने के लिए तैयार हो गये परंतु ऋत्विजों ने उन्हें रोक दिया और इन्द्र को अग्नि में हवन करने का वचन दिया।

याजक क्रोधपूर्वक इन्द्र का आवाहन कर स्त्रुवा द्वारा आहुति डालना ही चाहते थे कि ब्रह्माजी ने प्रकट होकर उन्हें रोक दिया और कहा कि महाराज पृथु के निन्यानवें ही यज्ञ रहने दो। पृथु के निन्यानवें यज्ञों से यज्ञभोक्ता यज्ञेश्वर भगवान विष्णुजी संतुष्ट हुए और प्रकट होकर राजा से इन्द्र को क्षमा करने के लिए कहा। इन्द्र अपने कर्म से लज्जित होकर राजा पृथु के चरणों में गिरना ही चाहते थे कि राजा ने उन्हें प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया।

फिर महाराज पृथु ने विश्वात्मा, भक्तवत्सल भगवान का पूजन किया और क्षण-क्षण में उमड़ते हुए भक्तिभाव में निमग्न होकर प्रभु के चरणकमल पकड़ लिए। श्री हरि वहाँ से जाना चाहते थे किंतु पृथु के प्रति जो उनका वात्सल्यभाव था उसने उन्हें रोक लिया। महाराज पृथु भी नेत्रों में जल भर आने के कारण न तो भगवान का दर्शन ही कर सके और न कण्ठ गदगद हो जाने के कारण कुछ बोल ही सके। उन्हें हृदय से आलिंगन कर पकड़े रहे और हाथ जोड़े ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये। फिर महाराज पृथु नेत्रों के आँसू पोंछकर अतृप्त दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए इस प्रकार स्तुति करने लगेः

'मोक्षपति प्रभो ! आप वर देने वाले ब्रह्मादि देवताओं को भी वर देने में समर्थ हैं। कोई भी बुद्धिमान पुरुष आपसे देहाभिमानियों के भोगने योग्य विषयों को कैसे माँग सकता है? वे तो नारकीय जीवों को भी मिलते हैं। अतः मैं इन तुच्छ विषयों को आपसे नहीं माँगता। अनुक्रम

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन् न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।

महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।।

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः।

स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः।।

मुझे तो उस मोक्षपद की भी इच्छा नहीं है जिसमें महापुरुषों के हृदय से उनके मुख द्वारा निकला हुआ आपके चरणकमलों का मकरन्द नहीं है, जहाँ आपकी कीर्ति-कथा सुनने का सुख नहीं मिलता। इसलिए मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिए, जिनसे मैं आपके लीलागुणों को सुनता ही रहूँ। पुण्यकीर्ति प्रभो ! आपके चरणकमल-मकरन्दरूपी अमृतकणों को लेकर महापुरुषों के मुख से जो वायु निकलती है, उसी में इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्व को भूले हुए हम कुयोगियों को पुनः तत्त्वज्ञान करा देती है। अतएव हमें दूसरे वरों की कोई आवश्यकता नहीं है।

(श्रीमद् भागवतः 4.20.24.25)

उत्तम कीर्ति वाले प्रभो ! सत्संग में आपके मंगलमय सुयश को दैववश एक बार भी सुन लेने पर कोई पशुबुद्धि पुरुष भले ही तृप्त हो जाये; गुणग्राही उसे कैसे छोड़ सकता है? सब प्रकार के पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए स्वयं लक्ष्मी जी भी आपके सुयश को सुनना चाहती हूँ। अब लक्ष्मीजी के समान मैं भी अत्यन्त उत्सुकता से आप सर्वगुणधाम पुरुषोत्तम की सेवा ही करना चाहता हूँ। किंतु ऐसा न हो कि एक ही पति की सेवा प्राप्त करने की होड़ होने के कारण आपके चरणों में ही मन को एकाग्र करने वाले हम दोनों में कलह छिड़ जाये।

जगदीश्वर ! जगज्जननी लक्ष्मी जी के हृदय में मेरे प्रति विरोधभाव होने की संभावना तो है ही; क्योंकि आपके जिस सेवाकार्य में उनका अनुराग है, उसी के लिए मैं भी लालायित हूँ। किंतु आप दीनों पर दया करते हैं, उनके तुच्छ कर्मों को भी बहुत करके मानते हैं। इसलिए मुझे आशा है कि हमारे झगड़े में भी आप मेरा ही पक्ष लेंगे। आप तो अपने स्वरूप में ही रमण करते हैं, आपको भला लक्ष्मीजी से भी क्या लेना है। इसी से निष्काम महात्मा ज्ञान हो जाने के

बाद भी आपका भजन करते हैं। आपमें माया के कार्य अहंकारादि का सर्वथा अभाव है। भगवन् ! मुझे तो आपके चरणकमलों का निरंतर चिंतन करने से सिवा सत्पुरुषों का कोई और प्रयोजन ही नहीं जान पड़ता। मैं भी बिना किसी इच्छा के आपका भजन करता हूँ। आपने जो मुझसे कहा कि 'वर माँग' सो आपकी इस वाणी को तो मैं संसार की मोह में डालने वाली ही मानता हूँ। यही क्या, आपकी वेदरूपा वाणी ने भी तो जगत को बाँध रखा है। यदि उस वेदवाणीरूप रस्सी से लोग बँधे न होते तो वे मोहवश सकाम कर्म क्यों करते? प्रभो ! आपकी माया से ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप आपसे विमुख होकर अज्ञानवश अन्य स्त्री-पुत्रादि की इच्छा करता है। फिर भी जिस प्रकार पिता पुत्र की प्रार्थना की अपेक्षा न रखकर अपने-आप ही पुत्र का कल्याण करता है, उसी प्रकार आप भी हमारी इच्छा की अपेक्षा न करके हमारे हित के लिए स्वयं ही प्रयत्न करें।' अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 4.20.23-31)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

रूद्र द्वारा स्तुति

राजा पृथु के प्रपौत्र प्राचीनबर्हि ने ब्रह्माजी के कहने से समुद्र की कन्या शतद्रुति से विवाह किया था। शतद्रुति के गर्भ से प्राचीनबर्हि के प्रचेता नाम के दस पुत्र हुए। वे सब बड़े ही धर्मज्ञ तथा एक से नाम और आचरणवाले थे। पिता द्वारा सन्तानोत्पत्ति का आदेश दिये जाने पर वे सब तपस्या करते हुए श्रीहरि की आराधना की। घर से तपस्या करने के लिए जाते समय मार्ग में श्री महादेवजी ने उन्हें दर्शन देकर कृपापूर्वक उपदेश दिया और स्तोत्र सुनाया। वह नारायण-परायण करूणार्द्रहृदय भगवान रूद्र द्वारा की गयी श्रीहरि की पवित्र, मंगलमयी एवं कल्याणकारी स्तुति इस प्रकार से हैः

'भगवन् ! आपका उत्कर्ष उच्चकोटि के आत्मज्ञानियों के कल्याण के लिए, निजानन्द लाभ के लिए है, उससे मेरा भी कल्याण हो। आप सर्वदा अपने निरतिशय परमानंद-स्वरूप में ही स्थित रहते हैं, ऐसे सर्वात्मक आत्मस्वरूप आपको नमस्कार है। आप पद्मनाभ (समस्त लोकों के आदिकारण) हैं; भूतसूक्ष्म (तन्मात्र) और इन्द्रियों के नियंता, शांत, एकरस और स्वयंप्रकाश वासुदेव (चित्त के अधिष्ठाता) भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त),

अनन्त और मुखाग्नि के द्वारा सम्पूर्ण लोकों का संहार करने वाले अहंकार के अधिष्ठाता संकर्षण तथा जगत के प्रवृष्ट ज्ञान के उदगमस्थान बुद्धि के अधिष्ठाता प्रद्युम्न हैं, आपको नमस्कार है। आप ही इन्द्रियों के स्वामी, मनस्तत्त्व के अधिष्ठाता भगवान अनिरुद्ध हैं; आपको बार-बार नमस्कार है। आप अपने तेज से जगत को व्याप्त करने वाले सूर्यदेव हैं, पूर्ण होने के कारण आपमें वृद्धि और क्षय नहीं होता; आपको नमस्कार है। आप स्वर्ग और मोक्ष के द्वार तथा निरंतर पवित्र हृदय में रहने वाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सुवर्णरूप वीर्य से युक्त और चातुर्होत्र कर्म के साधन तथा विस्तार करने वाले अग्निदेव हैं; आपको नमस्कार है। आप पितर और देवताओं के पोषक सोम हैं तथा तीनों वेदों के अधिष्ठाता हैं; हम आपको नमस्कार करते हैं। आप ही समस्त प्राणियों को तृप्त करने वाले सर्वरस (जल) रूप हैं; आपको नमस्कार है। आप समस्त प्राणियों के देह, पृथ्वी और विराटस्वरूप हैं तथा त्रिलोकी की रक्षा करने वाले मानसिक, ऐंद्रिय और शारीरिक गुण शब्द के द्वारा समस्त पदार्थों का ज्ञान कराने वाले तथा बाहर-भीतर का भेद करने वाले आकाश हैं तथा आप ही महान पुण्यों से प्राप्त होने वाले परम तेजोमय स्वर्ग-वैकुण्ठादि लोक हैं; आपको पुनः-पुनः नमस्कार है। आप पितृलोक की प्राप्ति कराने वाले प्रवृत्ति-कर्मरूप और देवलोक की प्राप्ति के साधन निवृत्ति-कर्मरूप हैं तथा आप ही अधर्म के फलस्वरूप दुःखदायक अनुक्रम मृत्यु हैं; आपको नमस्कार है। नाथ ! आप ही पुराणपुरुष तथा सांख्य और योग के अधीश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं, आप सब प्रकार की कामनाओं की पूर्ति के कारण, साक्षात् मंत्रमूर्ति और महान धर्मस्वरूप हैं; आपकी ज्ञानशक्ति किसी भी प्रकार कुण्ठित होने वाली नहीं है, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप ही कर्ता, करण और कर्म इन तीनों शक्तियों के एकमात्र आश्रय हैं; आप ही अहंकार के अधिष्ठाता रूद्र हैं; आप ही ज्ञान और क्रियास्वरूप हैं तथा आपसे ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणिओं की अभिव्यक्ति होती है; आपको नमस्कार है।

प्रभो ! हमें आपके दर्शनों की अभिलाषा है, अतः आपके भक्तजन जिसका पूजन करते हैं और जो आपके निज जनों को अत्यंत प्रिय है अपने उस अनूप रूप की आप हमें झाँकी कराइये। आपका वह रूप अपने गुणों से समस्त इन्द्रियों को तृप्त करने वाला है। वह वर्षाकालीन मेघ के समान स्निग्ध, श्याम और सम्पूर्ण सौन्दर्यों का सार-सर्वस्व है। सुन्दर चार विशाल भुजाएँ महामनोहर मुखारविन्द, कमल-दल के समान नेत्र, सुन्दर भौंहें, सुघड़ नासिका, मनमोहिनी दंतपंक्ति, अमोल कपोलयुक्त मनोहर मुखमंडल और शोभाशाली समान कर्ण-युगल हैं। प्रीतिपूर्ण उन्मुक्त हास्य तिरछी चितवन, काली-काली घुँघराली अलकें, कमलकुसुम कमलकुसुम की केसर के समान फहराता हुआ पीताम्बर, झिलमिलाते हुए कुण्डल, चमचमाते हुए मुकुट, कंगन (कंकण), हार, नूपुर और मेखला आदि विचित्र आभूषण तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और कौस्तुभ मणि के कारण उसकी अपूर्व शोभा है। उसके सिंह के समान स्थूल कंधे हैं, जिन पर हार, केयूर

एवं कुण्डलादि की कांति झिलमिलाती रहती है, तथा कौस्तुभ मणि की कांति से सुशोभित मनोहर ग्रीवा है। उसका श्यामल वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्न के रूप में लक्ष्मी जी का नित्य निवास होने के कारण कसौटी की शोभा को भी मात करता है। उसका त्रिवली से सुशोभित पीपल के पत्ते के समान सुडौल उदर श्वास के आने-जाने से हिलता हुआ बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है। उसमें जो भँवर के समान चक्करदार नाभि है, वह इतनी गहरी है कि उससे उत्पन्न हुआ यह विश्व मानों, फिर उसी में लीन होना चाहता है। श्याम वर्ण कटिभाग में पीताम्बर और सुवर्ण की मेखला शोभायमान है। समान और सुन्दर चरण, पिंडली, जाँघ और घुटनों के कारण आपका दिव्य विग्रह बड़ा ही सुघड़ जान पड़ता है। आपके चरणकमलों की शोभा शरद् ऋतु के कमलदल की कांति का भी तिरस्कार करती है। उनके नखों से जो प्रकाश निकलता है, वह जीवों के हृदयान्धकार को तत्काल नष्ट कर देता है। हमें आप कृपा करके भक्तों के भयहारी एवं आश्रयस्वरूप उसी रूप का दर्शन कराइये। जगदगुरो ! हम अज्ञानावृत प्राणियों को अपनी प्राप्ति का मार्ग बतलानेवाले आप ही हमारे गुरु हैं। अनुक्रम

एतद्रूपमनुध्येयमात्म शुद्धिमभीप्सताम्।

यद् भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्मनुतिष्ठताम्।।

भवान् भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम्।

स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविदगतिः।।

प्रभो ! चित्तशुद्धि की अभिलाषा रखने वाले पुरुष को आपके इस रूप का निरंतर ध्यान करना चाहिए, इसकी भक्ति ही स्वधर्म का पालन करने वाले पुरुष को अभय करने वाली है। स्वर्ग का शासन करने वाला इन्द्र भी आपको ही पाना चाहता है तथा विशुद्ध आत्मज्ञानियों की गति भी आप ही हैं। इस प्रकार आप सभी देहधारियों के लिए अत्यंत दुर्लभ हैं; केवल भक्तिमान पुरुष ही आपको पा सकते हैं।

(श्रीमद् भागवतः 4.24.53,54)

सत्पुरुषों के लिए भी दुर्लभ अनन्य भक्ति से भगवान को प्रसन्न करके, जिनकी प्रसन्नता किसी अन्य साधना से दुःसाध्य है, ऐसा कौन होगा जो उनके चरणतल के अतिरिक्त और कुछ चाहेगा। जो काल अपने अदम्य उत्साह और पराक्रम से फड़कती हुए भौंह के इशारे से सारे संसार का संहार कर डालता है, वह भी आपके चरणों की शरण में गये हुए प्राणी पर अपना अधिकार नहीं मानता। ऐसे भगवान के प्रेमी भक्तों का यदि आधे क्षण के लिए भी समागम हो जाय तो

उसके सामने मैं स्वर्ग और मोक्ष को कुछ नहीं समझता; फिर मर्त्यलोक के तुच्छ भोगों की तो बात ही क्या है। प्रभो ! आपके चरण सम्पूर्ण पापराशि को हर लेने वाले हैं। हम तो केवल यही चाहते हैं कि जिन लोगों ने आपकी कीर्ति और तीर्थ (गंगाजी) में आन्तरिक और बाह्य स्नान करके मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के पापों को धो डाला है तथा जो जीवों के प्रति दया, राग-द्वेषरहित चित्त तथा सरलता आदि गुणों से युक्त हैं, उन आपके भक्तजनों का संग हमें सदा प्राप्त होता रहे। यही हम पर आपकी बड़ी कृपा होगी। जिस साधक का चित्त भक्तियोग से अनुगृहीत एवं विशुद्ध होकर न तो बाह्य विषयों में भटकता है और न अज्ञान-गुहारूप प्रकृति में ही लीन होता है, वह अनायास ही आपके स्वरूप का दर्शन पा जाता है। जिसमें यह सारा जगत दिखायी देता है और जो स्वयं सम्पूर्ण जगत में भास रहा है, वह आकाश के समान विस्तृत और परम प्रकाशमय ब्रह्मतत्त्व आप ही हैं।

भगवान ! आपकी माया अनेक प्रकार के रूप धारण करती है। इसी के द्वारा आप इस प्रकार जगत की रचना, पालन और संहार करते हैं जैसे यह कोई सद् वस्तु हो। किंतु इससे आपमें किसी प्रकार का विकार नहीं आता। माया के कारण दूसरे लोगों में ही भेदबुद्धि उत्पन्न होती है, आप परमात्मा पर वह अपना प्रभाव डालने में असमर्थ होती है। आपको तो हम परम स्वतन्त्र ही समझते हैं। आपका स्वरूप पंचभूत, इन्द्रिय और अंतःकरण के प्रेरक रूप से उपलक्षित होता है। जो कर्मयोगी पुरुष सिद्धि प्राप्त करने के लिए तरह-तरह के कर्मों द्वारा आपके इस सगुण, साकारस्वरूप का श्रद्धापूर्वक भलीभाँति पूजन करते हैं, वे ही वेद और शास्त्रों के सच्चे मर्मज्ञ हैं। प्रभो ! आप ही अद्वितीय आदिपुरुष हैं। सृष्टि के पूर्व आपकी मायाशक्ति सोयी रहती है। फिर उसी के द्वारा सत्त्व, रज और तमरूप गुणों का भेद होता है और इसके बाद उन्हीं गुणों से महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, देवता, ऋषि और समस्त प्राणियों से युक्त इस जगत की उत्पत्ति होती है। अनुक्रम

फिर आप अपनी मायाशक्ति से रचे हुए इन जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उदभिज्ज भेद से चार प्रकार के शरीरों में अंश रूप से प्रवेश कर जाते हैं और जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मधुमक्खियाँ अपने ही उत्पन्न किये हुए मधु का आस्वादन करती हैं, उसी प्रकार वह आपका अंश उन शरीरों में रहकर इन्द्रियों के द्वारा इन तुच्छ विषयों को भोगता है। आपके उस अंश को ही पुरुष या जीव कहते हैं।

प्रभो ! आपका तत्त्वज्ञान प्रत्यक्ष से नहीं, अनुमान से होता है। प्रलयकाल उपस्थित होने पर कालस्वरूप आप ही अपने प्रचण्ड एवं असह्य वेग से पृथ्वी आदि भूतों को अन्य भूतों से विचलित कराकर समस्त लोकों का संहार कर देते हैं। जैसे वायु अपने असहनीय एवं प्रचण्ड झोंकों से मेघों के द्वारा ही मेघों को तितर-बितर करके नष्ट कर डालती है। भगवन् ! यह

मोहग्रस्त जीव प्रमादवश हर समय इसी चिंता में रहता है कि 'अमुक कार्य करना है।' इसका लोभ बढ़ गया है और इसे विषयों की ही लालसा बनी रहती है। किंतु आप सदा ही सजग रहते हैं; भूख से जीभ लपलपाता हुआ सर्प जैसे चूहे को चट कर जाता है, उसी प्रकार आप अपने कालस्वरूप से उसे सहसा लील जाते हैं। आपकी अवहेलना करने के कारण अपनी आयु को व्यर्थ माननेवाला ऐसा कौन विद्वान होगा, जो आपके चरणकमलों को बिसारेगा? इनकी पूजा तो काल की आशंका से ही हमारे पिता ब्रह्माजी और स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओं ने भी बिना कोई विचार किये केवल श्रद्धा से ही की थी। ब्रह्मन ! इस प्रकार सारा जगत रूद्ररूप काल के भय से व्याकुल है। अतः परमात्मन् ! इस तत्त्व को जानने वाले हम लोगों के तो इस समय आप ही सर्वथा भयशून्य आश्रय हैं।'

(श्रीमद् भागवतः 4.24.33-68)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रह्लाद द्वारा स्तुति

परमभक्त प्रह्लाद के क्रूर पिता हिरण्यकशिपु को नृसिंह भगवान ने अपने नखरूपी शस्त्रों द्वारा विदीर्ण कर डाला परंतु फिर भी उनका उग्र कोप शांत नहीं हो रहा था। देवताओं ने उन्हें शांत करने के लिए लक्ष्मीजी से प्रार्थना की किंतु वे भी भगवान के पास जाने से डर रही थी, तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने भक्तराज प्रह्लाद को भेजा। भक्त प्रह्लाद शरणागतवत्सल भगवान के पास जाकर हाथ जोड़ पृथ्वी पर साष्टांग लोट गये। नन्हें-से बालक को अपने चरणों में नतमस्तक देखकर प्रभु का उग्र कोप शांत हो गया। उन्होंने प्रह्लाद को उठाकर जैसे ही अपना करकमल उनके सिर पर रखा, भक्त प्रह्लाद को परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार हो गया। उनके हृदय में प्रेम की धारा प्रवाहित होने लगी और नेत्रों से आनंदाश्रु झरने लगे। वे प्रभु के गुणों का चिन्तन करते हुए गदगद वाणी से भावपूर्वक श्रीहरि की इस प्रकार से स्तुति करने लगेः अनुक्रम

'ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि-मुनि और सिद्धपुरुषों की बुद्धि निरन्तर सत्त्वगुण में ही स्थित रहती है। फिर भी वे अपनी धाराप्रवाह स्तुति और अपने विविध गुणों से आपको अब तक भी संतुष्ट नहीं कर सके, फिर मैं तो घोर असुर जाति में उत्पन्न हुआ हूँ। क्या आप मुझसे सन्तुष्ट हो सकते हैं?

मैं समझता हूँ कि धन, कुलीनता, रूप, तप विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरूष, बुद्धि और योग ये सभी गुण परम पुरुष भगवान को संतुष्ट करने में समर्थ नहीं हैं, परंतु भक्ति से तो

भगवान गजेन्द्र पर भी संतुष्ट हो गये थे। मेरी समझ से इन बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान कमलनाभ के चरणकमलों से विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने, मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान के चरणों में समर्पित कर रखे हैं, क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुल तक को पवित्र कर देता और बड़प्पन का अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपने को भी पवित्र नहीं कर सकता। सर्वशक्तिमान प्रभु अपने स्वरूप के साक्षात्कार से ही परिपूर्ण हैं। उन्हें अपने लिए क्षुद्र पुरुषों से पूजा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। वे करूणावश ही भोले भक्तों के हित के लिए उनके द्वारा की हुई पूजा स्वीकार कर लेते हैं। जैसे अपने मुख का सौन्दर्य दर्पण में दिखनेवाले प्रतिबिम्ब को भी सुन्दर बना देता है, वैसे ही भक्त भगवान के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है, वह उसे ही प्राप्त होता है। इसलिए सर्वथा अयोग्य और अनधिकारी होने पर भी मैं बिना किसी शंका के अपनी बुद्धि के अनुसार सब प्रकार से भगवान की महिमा का वर्णन कर रहा हूँ। इस महिमा के गान का ही ऐसा प्रभाव है कि अविद्यावश संसारचक्र में पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है।

भगवन् ! आप सत्त्व गुण के आश्रय हैं। ये ब्रह्मा आदि सभी देवता आपके आज्ञाकारी भक्त हैं। ये हम दैत्यों की तरह आपसे द्वेष नहीं करते। प्रभो ! आप बड़े-बड़े सुन्दर अवतार लेकर इस जगत के कल्याण एवं अभ्युदय के लिए तथा उसे आत्मानंद की प्राप्ति कराने के लिए अनेकों प्रकार की लीलाएँ करते हैं। जिस असुर को मारने के लिए आपने क्रोध किया था, वह मारा जा चुका है। अब आप अपना क्रोध शांत कीजिए। जैसे बिच्छू और साँप की मृत्यु से सज्जन भी सुखी ही होते हैं, वैसे ही इस दैत्य के संहार से सभी लोगों को बड़ा सुख मिला है। अब सब आपके शांत स्वरूप के दर्शन की बाट जोह रहे हैं। नृसिंहदेव ! भय से मुक्त होने के लिए भक्तजन आपके इस रूप का स्मरण करेंगे।

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्यजिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रंदष्ट्रात्।

आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशंकुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात्।।

परमात्मन् ! आपका मुख बड़ा भयावना है। आपकी जीभ लपलपा रही है। आँखें सूर्य के समान हैं। भौहें चढ़ी हुई हैं। दढ़ें बड़ी पैनी हैं। आँतों की माला, गरदन के बाल खून से लथपथ, बर्छे की तरह सीधे खड़े कान और दिग्गजों को भी भयभीत देने वाला सिंहनाद एवं शत्रुओं को फाड़ डालने वाले आपके इन नखों को देखकर मैं तनिख भी भयभीत नहीं हुआ हूँ। अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 7.9.15)

दीनबन्धो ! मैं भयभीत हूँ तो केवल इस असह्य और उग्र संसारचक्र में पिसने से। मैं अपने कर्मपाशों से बँधकर इन भयंकर जंतुओं के बीच में डाल दिया गया हूँ। मेरे स्वामी ! आप प्रसन्न होकर मुझे कब अपने उन चरणकमलों में बुलायेंगे, जो समस्त जीवों की एकमात्र शरण और मोक्षस्वरूप हैं। अनन्त ! मैं जिन-जिन योनियों में गया, उन सभी योनियों में प्रिय के वियोग और अप्रिय क संयोग से होने वाले शोक की आग में झुलसता रहा। उन दुःखों को मिटाने की जो दवा है, वह भी दुःखरूप ही है। मैं न जाने कब से अपने से अतिरिक्त वस्तुओं को आत्मा समझकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। अब आप ऐसा साधन बतलाइये जिससे कि आपकी सेवा-भक्ति प्राप्त कर सकूँ। प्रभो ! आप हमारे प्रिय हैं, अहेतुक हितैषी सुहृद हैं। आप री वास्तव में सबके परमाराध्य हैं। मैं ब्रह्माजी के द्वारा गायी हुई आपकी लीला-कथाओं का गान करता हुआ बड़ी सुगमता से रागादि प्राकृत गुणों से मुक्त होकर इस संसार की कठिनाइयों को पार कर जाऊँगा, क्योंकि आपके चरणयुगलों में रहने वाले भक्त परमहंस महात्माओं का संग तो मुझे मिलता ही रहेगा। भगवान नृसिंह ! इस लोक में दुःखी जीवों का दुःख मिटाने के लिए जो उपाय माना जाता है, वह आपके उपेक्षा करने पर एक क्षण के लिए ही होता है। यहाँ तक कि माँ-बाप बालक की रक्षा नहीं कर सकते, औषधि रोग नहीं मिटा सकती और समुद्र में डूबते हुए को नौका नहीं बचा सकती।

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद् यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा।

भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम्।।

सत्त्वादि गुणों के कारण भिन्न-भिन्न स्वभाव के जितने भी ब्रह्मादि श्रेष्ठ और कालादि कनिष्ठ कर्ता हैं, उनको प्रेरित करने वाले आप ही हैं। वे आपकी प्रेरणा से जिस आधार में स्थित होकर, जिस निमित्त से, जिन मिट्टी आदि उपकरणों से, जिस समय, जिन साधनों के द्वारा, जिस अदृष्ट आदि की सहायता से, जिस प्रयोजन के उद्देश्य से, जिस विधि से, जो कुछ उत्पन्न करते हैं या रूपान्तरित करते हैं, वे सब और वह सब आपका ही स्वरूप है।

(श्रीमद् भागवतः 7.9.20)

पुरुष की अनुमति से काल के द्वारा गुणों में क्षोभ होने पर माया मनःप्रधान लिंगशरीर का निर्माण करती हैं। यह लिंग शरीर बलवान, कर्ममय एवं अनेक नाम-रूपों में आसक्त छंदोमय है। यही अविद्या के द्वारा कल्पित मन, दस इन्द्रिय और पाँच तन्मात्रा – इन सोलह विकाररूप अरों से युक्त संसार चक्र में डालकर ईख के समान मुझे पेर रही है। आप अपनी चैतन्यशक्ति से बुद्धि के समस्त गुणों को सर्वदा पराजित रखते हैं और कालरूप से सम्पूर्ण साध्य और साधनों को

अपने अधीन रखते हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप मुझे इनसे बचाकर अपनी सन्निधि में खींच लीजिए। भगवन् ! जिनके लिए संसारी लोग बड़े लालायित रहते हैं, स्वर्ग में मिलनेवाली समस्त लोकपालों की वह आयु, लक्ष्मी और ऐश्वर्य मैंने खूब देख लिए। जिस समय मेरे पिता अनुक्रम तनिक क्रोध करके हँसते थे और उससे उनकी भौंहें थोड़ी टेढ़ी हो जाती थीं, तब उन स्वर्ग की सम्पत्तियों के लिए कहीं ठिकाना नहीं रह जाता था। वे लुटती फिरती थीं किंतु आपने मेरे उन पिता को भी मार डाला। इसलिए मैं ब्रह्मलोक तक की आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य और वे इन्द्रियभोग, जिन्हें संसार के प्राणी चाहा करते हैं, नहीं चाहता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अत्यंत शक्तिशाली काल का रूप धारण करके आपने उन्हें ग्रस रखा है। इसलिए मुझे आप अपने दासों की सन्निधि में ले चलिए। विषयभोग की बातें सुनने में ही अच्छी लगती हैं, वास्तव में वे मृगतृष्णा के जल के समान नितान्त असत्य हैं और यह शरीर भी, जिससे वे भोग भोगे जाते हैं अगणित रोगों का उदगम स्थान है। कहाँ वे मिथ्या विषयभोग और कहाँ यह रोगयुक्त शरीर ! इन दोनों की क्षणभंगुरता और असारता जानकर भी मनुष्य इनसे विरक्त नहीं होता। वह कठिनाई से प्राप्त होने वाले भोग के नन्हें-नन्हे मधुबिंदुओं से अपनी कामना की आग बुझाने की चेष्टा करता है। प्रभो ! कहाँ तो इस तमोगुणी असुरवंश में रजोगुण से उत्पन्न हुआ मैं और कहाँ आपकी अनन्त कृपा ! धन्य है ! आपने अपना परम प्रसादस्वरूप और सकल सन्तापहारी वह करकमल मेरे सिर पर रखा है, जिसे आपने ब्रह्मा, शंकर और लक्ष्मीजी के सिर पर भी कभी नहीं रखा। दूसरे संसारी जीवों के समान आपमें छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं है क्योंकि आप सबके आत्मा और अकारण प्रेमी हैं। फिर भी कल्पवृक्ष के समान आपका कृपा-प्रसाद भी सेवन-भजन से ही प्राप्त होता है। सेवा के अनुसार ही जीवों पर आपकी कृपा का उदय होता है, उसमें जातिगत उच्चता या नीचता कारण नहीं है। भगवन् ! यह संसार एक ऐसा अँधेरा कुआँ है, जिसमें कालरूपी सर्प डँसने के लिए सदा तैयार रहता है। विषयभोगों की इच्छावाले पुरुष उसी में गिरे हुए हैं। मैं भी संगवश उनके पीछे उसी में गिरने जा रहा था परंतु भगवन् ! देवर्षि नारद ने मुझे अपनाकर बचा लिया। तब भला, मैं आपके भक्तजनों की सेवा कैसे छोड़ा सकता हूँ। अनन्त ! जिस समय मेरे पिता ने अन्याय करने के लिए कमर कसकर हाथ में खड्ग ले लिया और कहने लगे कि 'यदि मेरे सिवा कोई और ईश्वर है तो तुझे बचा ले, मैं तेरा सिर काटता हूँ' उस समय आपने मेरे प्राणों की रक्षा की और मेरे पिता का वध किया। मैं तो समझता हूँ कि आपने-अपने प्रेमी भक्त सनकादि ऋषियों का वचन सत्य करने के लिए ही वैसा किया था।

भगवन् ! यह सम्पूर्ण जगत एकमात्र आप ही हैं क्योंकि इसके आदि में आप ही कारणरूप से थे, अंत में आप ही अवधि के रूप में रहेंगे और बीच में इसकी प्रतीति के रूप में भी केवल आप ही हैं। आप अपनी माया से गुणों के परिणामस्वरूप इस जगत की सृष्टि करके इसमें पहले से विद्यमान रहने पर भी प्रवेश की लीला करते हैं और उन गुणों से युक्त होकर अनेक मालूम पड़

रहे हैं। भगवान ! यह जो कुछ कार्य-कारण के रूप में प्रतीत हो रहा है, वह सब आप ही हैं और इससे भिन्न भी आप ही हैं। अपने-पराये का भेदभाव तो अर्थहीन शब्दों की माया है, क्योंकि जिससे जिसका जन्म, स्थिति, लय और प्रकाश होता है, वह उसका स्वरूप ही होता है। जैसे, बीज और वृक्ष कारण और कार्य की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, तो भी गंध-तन्मात्र की दृष्टि से दोनों एक ही हैं। अनुक्रम

भगवन् ! आप इस सम्पूर्ण विश्व को स्वयं ही अपने में समेटकर आत्मसुख का अनुभव करते हुए निष्क्रिय होकर प्रलयकालीन जल में शयन करते हैं। उस समय अपने स्वयंसिद्ध योग के द्वारा बाह्य दृष्टि को बंद कर आप अपने स्वरूप के प्रकाश में निद्रा को विलीन कर लेते हैं और तुरीय ब्रह्मपद में स्थित रहते हैं। उस समय आप न तो तमोगुण से ही युक्त होते और न तो विषयों को ही स्वीकार करते हैं। आप अपनी कालशक्ति से प्रकृति के गुणों को प्रेरित करते हैं, इसलिए यह ब्रह्माण्ड आपका ही शरीर है। पहले यह आपमें ही लीन था। जब प्रलयकालीन जल के भीतर शेषशय्या पर शयन करने वाले आपने योगनिद्रा की समाधि त्याग दी, तब वट के बीज विशाल वृक्ष के समान आपकी नाभि से ब्रह्माण्ड कमल उत्पन्न हुआ। उस पर सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजी प्रकट हुए। जब उन्हें कमल के सिवा और कुछ भी दिखायी न पड़ा, तब वह अपने बीजरूप से व्याप्त आपको वे न जान सके और आपको अपने से बाहर समझकर जल के भीतर घुसकर सौ वर्ष तक ढूँढते रहे। परंतु वहाँ उन्हें कुछ नहीं मिला। यह ठीक ही है, क्योंकि अंकुर उग आने पर उसमें व्याप्त बीज को कोई बाहर अलग कैसे देख सकता है। ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हार कर कमल पर बैठ गये। बहुत समय बीतने पर जब उनका हृदय शुद्ध हो गया, तब उन्हें भूत, इन्द्रिय और अंतःकरण रूप अपने शरीर में ही ओतप्रोत रूप से स्थित आपके सूक्ष्मरूप का साक्षात्कार हुआ। ठीक वैसे ही जैसे पृथ्वी में व्याप्त उसकी सूक्ष्म तन्मात्रा गन्ध का होता है।

विराट पुरुष सहस्रों मुख, चरण, सिर, हाथ, जंघा, नासिका, मुख, कान, नेत्र, आभूषण और आयुधों से सम्पन्न था। चौदह लोक उनके विभिन्न अंगों के रूप में शोभायमान थे। वह भगवान की एक लीलामयी मूर्ति थी। उसे देखकर ब्रह्माजी को बड़ा आनंद हुआ। रजोगुण और तमोगुण रूप मधु और कैटभ नाम के दो बड़े बलवान दैत्य थे। जब वे वेदों को चुराकर ले गये, तब आपने हयग्रीव अवतार ग्रहण किया और उन दोनों को मारकर सत्त्वगुणरूप श्रुतियाँ ब्रह्माजी को लौटा दीं। वह सत्त्वगुण ही आपका अत्यंत प्रिय शरीर है – महात्मा लोग इस प्रकार वर्णन करते हैं। पुरुषोत्तम ! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर लोकों का पालन तथा विश्व के द्रोहियों का संहार करते हैं। इन अवतारों के द्वारा आप प्रत्येक युग में उसके धर्मों की रक्षा करते हैं। कलियुग में आप छिपकर गुप्त रूप से ही रहते हैं, इसीलिए आपका एक नाम 'त्रियुग' भी है।

वैकुण्ठनाथ ! मेरे मन की बड़ी दुर्दशा है। वह पाप-वासनाओं से तो कलुषित है ही, स्वयं भी अत्यंत दुष्ट है। वह प्रायः ही कामनाओं के कारण आतुर रहता है और हर्ष-शोक, भय, लोक-परलोक, धन, पत्नी, पुत्र आदि की चिंताओं से व्याकुल रहता है। इसे आपकी लीला-कथाओं में तो रस ही नहीं मिलता। इसके मारे मैं दीन हो रहा हूँ। ऐसे मन से मैं आपके स्वरूप का चिंतन कैसे करूँ? अच्युत ! यह कभी न अघानेवाली जीभ मुझे स्वादिष्ट रसों की ओर खींचती रहती है। जननेन्द्रिय सुन्दर स्त्री की ओर, त्वचा सुकोमल, स्पर्श की ओर, पेट भोजन की , कान मधुर अनुक्रम संगीत की ओर, नासिका भीनी-भीनी सुगंध की ओर, और ये चपल नेत्र सौन्दर्य की ओर मुझे खींचते रहते हैं। इनके सिवा कर्मेन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयों की ओर ले जाने के लिए जोर लगाती ही रहती हैं। मेरी तो वह दशा हो रही है, जैसे किसी पुरुष की बहुत सी पत्नियाँ उसे अपने-अपने शयनगृह में ले जाने से लिए चारों ओर से घसीट रही हों। इस प्रकार यह जीव अपने कर्मों के बंधन में पड़कर इस संसार रूप वैतरणी नदी में गिरा हुआ है। जन्म से मृत्यु, मृत्यु से जन्म और दोनों के द्वारा कर्मभोग करते-करते यह भयभीत हो गया है। यह अपना है, यह पराया है – इस प्रकार के भेदभाव से युक्त होकर किसी से मित्रता करता है तो किसी से शत्रुता। आप इस मूढ जीव-जाति की यह दुर्दशा देखकर करूणा से द्रवित हो जाइये। इस भवनदी से सर्वदा पार रहने वाले भगवन् ! इन प्राणियों को भी अब पार लगा दीजिये। जगदगुरो ! आप इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा पालन करने वाले हैं। ऐसी अवस्था में इन जीवों को इस भवनदी से पार उतार देने में आपको क्या परिश्रम है? दीनजनों के परम हितैषी प्रभो ! भूले-भटके मूढ ही महान पुरुषों के विशेष अनुग्रहपात्र होते हैं। हमें उसकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम आपके प्रियजनों की सेवा में लगे रहते हैं, इसलिए पार जाने की हमें कभी चिंता ही नहीं होती। परमात्मन् ! इस भव-वैतरणी से पार उतरना दूसरे लोगों के लिए अवश्य ही कठिन है, परंतु मुझे तो इससे तनिक भी भय नहीं है। क्योंकि मेरा चित्त इस वैतरणी में नहीं, आपकी उन लीलाओं के गान में मग्न रहता है, जो स्वर्गीय अमृत को भी तिरस्कृत करने वाली, परम अमृतस्वरूप हैं। मैं उन मूढ प्राणियों के लिए शोक कर रहा हूँ, जो आपके गुणगान से विमुख रहकर इन्द्रियों के विषयों का मायामय झूठा सुख प्राप्त करने के लिए अपने सिर पर सारे संसार का भार ढोते रहते हैं। मेरे स्वामी ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तो प्रायः अपनी मुक्ति के लिए निर्जन वन में जाकर मौनव्रत धारण कर लेते हैं। वे दूसरों की भलाई के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते परंतु मेरी दशा तो दूसरी ही हो रही है। मैं इन भूले हुए असहाय गरीबों को छोड़कर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता और इन भटकते हुए प्राणियों के लिए आपके सिवा और कोई सहारा भी नहीं दिखाया पड़ता।

घर में फँसे हुए लोगों को जो मैथुन आदि का सुख मिलता है, वह अत्यंत तुच्छ एवं दुःखरूप ही है। जैसे, कोई दोनों हाथों से खुजला रहा हो तो उस खुजली में पहले उसे कुछ थोड़ा-सा सुख मालूम पड़ता है, परंतु पीछे दुःख-ही-दुःख होता है। किंतु ये भूले हुए अज्ञानी मनुष्य

बहुत दुःख भोगने पर भी इन विषयों से अघाते नहीं। इसके विपरीत धीर पुरुष जैसे खुजलाहट को सह लेते हैं, वैसे ही कामादि वेगों को भी सह लेते हैं। सहने से ही उनका नाश होता है। पुरुषोत्तम ! मोक्ष के दस साधन प्रसिद्ध हैं – मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन, युक्तियों से शास्त्रों की व्याख्या, एकांत सेवन, जप और समाधि। परंतु जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, उनके लिए ये सब जीविका के साधन व्यापार मात्र रह जाते हैं और दम्भियों के लिए तो जब तक उनकी पोल खुलती नहीं, तभी तक ये जीवन-निर्वाह के साधन रहते हैं और भंडाफोड़ हो जाने पर वह भी नहीं। वेदों ने बीज और अंकुर के समान आपके दो रूप बताये हैं – कार्य और कारण। वास्तव में आप प्राकृत रूप से रहित हैं परंतु इन कार्य और कारणरूपों को छोड़कर आपके ज्ञान का कोई और साधन भी नहीं है | काष्ठमंथन के द्वारा जिस प्रकार अग्नि प्रकट की जाती है, उसी प्रकार योगीजन भक्तियोग की साधना से आपको कार्य और कारण दोनों में ही ढूँढ निकालते हैं। क्योंकि वास्तव में ये दोनों आपसे पृथक् नहीं हैं, आपके स्वरूप ही हैं। अनन्त प्रभो ! वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, पंचतन्मात्राएँ, प्राण, इन्द्रिय, मन, चित्त, अहंकार, सम्पूर्ण जगत एवं सगुण और निर्गुण, सब कुछ केवल आप ही हैं और तो क्या, मन और वाणी के द्वारा जो कुछ निरूपण किया गया है, वह सब आपसे पृथक नहीं है। समग्र कीर्ति के आश्रय भगवन् ! ये सत्त्वादि गुण और इन गुणों के परिणाम महत्तत्वादि, देवता, मनुष्य एवं मन आदि कोई भी आपका स्वरूप जानने में समर्थ नहीं है क्योंकि ये सब आदि-अंतवाले हैं और आप अनादि एवं अनन्त हैं। ऐसा विचार करके ज्ञानीजन शब्दों की माया से उपरत हो जाते हैं। **परम पूज्य ! आपकी सेवा के छः अंग हैं – नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मों का समर्पण, सेवा – पूजा, चरणकमलों का चिंतन और लीला-कथा का श्रवण।** इस षडंग-सेवा के बिना आपके चरणकमलों की भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? और भक्ति के बिना आपकी प्राप्ति कैसे होगी? प्रभो ! आप तो अपने परम प्रिय भक्तजनों के, परमहंसों के ही सर्वस्व हैं।' अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 7.9.8-50)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गजेन्द्र द्वारा स्तुति

क्षीरसागर के मध्य में मरकतमणियों से सुशोभित 'त्रिकूट' पर्वत था। उस पर वरुण देव का 'ऋतुमान' नाम का एक सुंदर उद्यान था, जिसमें देवांगनाएँ क्रीड़ा करती रहती थीं। उद्यान में सुनहले कमलोंवाला एक सरोवर था। उसमें ग्रीष्म-संतप्त गजराज अपनी प्रियाओं के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। अचानक एक बलवान ग्राह ने उसका पैर पकड़ लिया और वह जल में उसे

खींचने लगा। गजराज और उसकी प्रिया हथिनियों का रक्षा-प्रयत्न जब सर्वथा विफल हो गया तो गजेन्द्र ने असहाय भाव से सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र आश्रय भगवान की इस प्रकार से स्तुति कीः

'जो जगत के मूल कारण हैं और सबके हृदय में पुरुष के रूप में विराजमान हैं एवं समस्त जगत के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसार में चेतनता का विस्तार होता है, उन भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ, प्रेम से उनका ध्यान करता हूँ। यह संसार उन्हीं में स्थित है, उन्हीं की सत्ता से प्रतीत हो रहा है, वे ही इसमें व्याप्त हो रहे हैं और स्वयं वे इसके रूप में प्रकट हो रहे हैं। यह सब होने पर भी वे इस संसार और इसके कारण प्रकृति से सर्वथा परे हैं। उन स्वयंप्रकाश, स्वयंसिद्ध सत्तात्मक भगवान की मैं शरण ग्रहण करता हूँ। यह विश्व प्रपंच उन्हीं की माया से उनमें अध्यस्त है। यह कभी प्रतीत होता है तो कभी नहीं। परंतु उनकी दृष्टि ज्यों-की-त्यों एक-सी रहती हैं। वे इसके साक्षी हैं और उन दोनों को ही देखते रहते हैं। वे सबके मूल हैं और अपने मूल भी वही हैं। कोई दूसरा उनका कोई कारण नहीं है। वे ही समस्त कार्य और कारणों से अतीत प्रभु मेरी रक्षा करें। प्रलय के समय लोक, लोकपाल और इन सबके कारण सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल अत्यंत घना और गहरा अंधकार-ही-अंधकार रहता है। परंतु अनन्त परमात्मा उससे सर्वथा परे विराजमान रहते हैं। वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें। उनकी लीलाओं का रहस्य जानना बहुत ही कठिन है। वे नट की भाँति अनेकों वेष धारण करते हैं। उनके वास्तविक स्वरूप को न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही, फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है, जो वहाँ तक जा सके और उसका वर्णन कर सके? वे प्रभु मेरी रक्षा करें। जिनके परम मंगलमय स्वरूप का दर्शन करने के लिए महात्मागण संसार की समस्त आसक्तियों का परित्याग कर देते हैं और वन में जाकर अखण्डभाव से ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक व्रतों का पालन करते हैं तथा अपने आत्मा को सबके हृदय में विराजमान देखकर स्वाभाविक ही सबकी भलाई करते हैं। वे ही मुनियों के सर्वस्व भगवान मेरे सहायक हैं, वे ही मेरी गति हैं।

न उनके जन्म-कर्म हैं और न नाम-रूप, फिर उनके सम्बन्ध में गुण और दोष की तो कल्पना ही कैसे की जा सकती है? फिर भी विश्व की सृष्टि और संहार करने के लिए समय-समय पर वे उन्हें अपनी माया से स्वीकार करते हैं। उन्हीं अनन्त, शक्तिमान सर्वैश्वर्यमय परब्रह्म परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। वे अरूप होने पर भी बहुरूप हैं। उनके कर्म अत्यंत आश्चर्यमय हैं। मैं उनके चरणों में नमस्कार करता हूँ।

स्वयंप्रकाश, सबके साक्षी परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। जो मन, वाणी और चित्त से अत्यंत दूर हैं – उन परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

विवेकी पुरुष कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पण के द्वारा अपना अंतःकरण शुद्ध करके जिन्हें प्राप्त करते हैं तथा जो स्वयं तो नित्यमुक्त, परमानन्द एवं ज्ञानस्वरूप हैं ही, दूसरों को कैवल्य-मुक्ति देने का सामर्थ्य भी केवल उन्हीं में है उन प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का धर्म स्वीकार करके क्रमशः शांत, घोर और मूढ अवस्था भी धारण करते हैं, उन भेदरहित समभाव से स्थित एवं ज्ञानघन प्रभु को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। आप सबके स्वामी, समस्त क्षेत्रों के एकमात्र ज्ञाता एवं सर्वसाक्षी हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप स्वयं ही अपने कारण हैं। पुरुष और मूल प्रकृति के रूप में भी आप ही हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार। आप समस्त इन्द्रिय और उनके विषयों के द्रष्टा हैं, समस्त प्रतीतियों के आधार हैं। अहंकार आदि छायारूप असत् वस्तुओं के द्वारा आपका ही अस्तित्व प्रकट होता है। समस्त वस्तुओं की सत्ता के रूप में भी केवल आप ही भास रहे हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सबके मूल कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है तथा कारण होने पर भी आपमें विकार या परिणाम नहीं होता, इसलिए आप अनोखे कारण हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार ! जैसे समस्त नदी-झरने आदि का परम आश्रय समुद्र है, वैसे ही आप समस्त वेद और शास्त्रों के परम तात्पर्य हैं। आप मोक्षस्वरूप हैं और समस्त संत आपकी ही शरण ग्रहण करते हैं, अतः आपको अनुक्रम मैं नमस्कार करता हूँ। जैसे यज्ञ के काष्ठ अरणि में अग्नि गुप्त रहती है, वैसे ही आपने अपने ज्ञान को गुणों की माया से ढक रखा है। गुणों में क्षोभ होने पर उनके द्वारा विविध प्रकार की सृष्टि-रचना का आप संकल्प करते हैं। जो लोग कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पण के द्वारा आत्मतत्त्व की भावना करके वेद-शास्त्रों से ऊपर उठ जाते हैं, उनके आत्मा के रूप में आप स्वयं ही प्रकाशित हो जाते हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

जैसे कोई दयालु पुरुष फंदे में पड़े हुए पशु का बंधन काट दे, वैसे ही आप मेरे जैसे शरणागतों की फाँसी काट देते हैं। आप नित्यमुक्त हैं, परम करुणामय हैं और भक्तों का कल्याण करने में आप कभी आलस्य नहीं करते। आपके चरणों में मेरा नमस्कार है। समस्त प्राणियों के हृदय में अपने अंश के द्वारा अंतरात्मा के रूप में आप उपलब्ध होते रहते हैं। आप सर्वैश्वर्यपूर्ण एवं अनन्त हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जो लोग शरीर, पुत्र, गुरुजन, गृह, सम्पत्ति और स्वजनों में आसक्त हैं उन्हें आपकी प्राप्ति अत्यंत कठिन है। क्योंकि आप स्वयं गुणों की आसक्ति से रहित हैं। जीवनमुक्त पुरुष अपने हृदय में आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। उन सर्वैश्वर्यपूर्ण, ज्ञानस्वरूप भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना से मनुष्य उन्हीं का भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं, वे उनको सभी प्रकार का सुख देते हैं और अपने ही जैसा अविनाशी पार्षद शरीर भी देते हैं। वे ही परम दयालु प्रभु मेरा उद्धार करें। जिनके अनन्य प्रेमी भक्तजन उन्हीं की शरण में रहते हुए उनसे

किसी भी वस्तु की यहाँ तक कि मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं करते, केवल उनकी परम दिव्य मंगलमयी लीलाओं का गान करते हुए आनंद के समुद्र में निमग्न रहते हैं।

तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम्।

अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे।।

जो अविनाशी, सर्वशक्तिमान, अव्यक्त, इन्द्रियातीत और अत्यंत सूक्ष्म हैं, जो अत्यंत निकट रहने पर भी बहुत दूर जान पड़ते हैं, जो आध्यात्मिक योग अर्थात् ज्ञानयोग या भक्तियोग के द्वारा प्राप्त होते हैं, उन्हीं आदिपुरुष, अनन्त एवं परिपूर्ण परब्रह्म परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ।

(श्रीमद् भागवतः 8.3.21)

जिनकी अत्यंत छोटी कला से अनेकों नाम-रूप के भेदभाव से युक्त ब्रह्मा आदि देवता, वेद और चराचर लोकों की सृष्टि हुई है, जैसे धधकती हुई आग से लपटें और प्रकाशमान सूर्य से उनकी किरणें बार-बार निकलती और लीन होती रहती हैं, वैसे ही जिन स्वयंप्रकाश परमात्मा से बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीर, जो गुणों के प्रवाहरूप हैं, बार-बार प्रकट होते तथा लीन हो जाते हैं, वे भगवान न देवता हैं और न असुर। वे मनुष्य और पशु-पक्षी भी नहीं हैं। न वे स्त्री हैं, न पुरुष और न नपुंसक। वे कोई साधारण या असाधारण प्राणी भी नहीं हैं। न वे गुण हैं और न कर्म, न कार्य हैं और न तो अनुक्रम कारण ही। सबका निषेध हो जाने पर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सब कुछ हैं। वे ही परमात्मा मेरे उद्धार के लिए प्रकट हों। मैं जीना नहीं चाहता। यह हाथी की योनि बाहर और भीतर सब ओर से अज्ञानरूप आवरण के द्वारा ढकी हुई है, इसको रखकर करना ही क्या है? मैं तो आत्मप्रकाश को ढकने वाले उस अज्ञानरूप आवरण से छूटना चाहता हूँ, जो कालक्रम से अपने-आप नहीं छूट सकता, जो केवल भगवत्कृपा अथवा तत्त्वज्ञान के द्वारा ही नष्ट होता है। इसलिए मैं उन परब्रह्म 'परमात्मा' की शरण में हूँ जो विश्वरहित होने पर भी विश्व के रचयिता और विश्वस्वरूप हैं, साथ ही जो विश्व की अतंरात्मा के रूप में विश्वरूप सामग्री से क्रीड़ा भी करते रहते हैं, उन अजन्मा परम पद स्वरूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। योगी लोग योग के द्वारा कर्म, कर्म-वासना और कर्मफल को भस्म करके अपने योगशुद्ध हृदय में जिन योगेश्वर भगवान का साक्षात्कार करते हैं, उन प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रभो ! आपकी तीन शक्तियों सत्त्व, रज और तम के रागादि वेग असह्य हैं। समस्त इन्द्रियों और मन के विषयों के रूप में भी आप ही प्रतीत हो रहे हो। इसलिए जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, वे तो आपकी प्राप्ति का मार्ग भी नहीं पा सकते। आपकी शक्ति अनन्त हैं। आप शरणागतवत्सल हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। आपकी माया अहंबुद्धि से आत्मा का स्वरूप ढक गया है, इसी से यह जीव अपने स्वरूप को नहीं जान पाता। आपकी महिमा अपार है। उन सर्वशक्तिमान एवं माधुर्यनिधि भगवान की मैं शरण में हूँ।

(श्रीमद् भागवतः 8.3.2-21)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अक्रूर जी द्वारा स्तुति

अक्रूर जी ने श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के साथ व्रज से मथुरा नगरी लौटते समय यमुनाजी स्नान के पश्चात् गायत्री मंत्र का जप करते हुए जब जल में डुबकी लगायी, तब उन्होंने शेषजी की गोद में विराजमान शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन किये थे। भगवान की अदभुत झाँकी देखकर उनका हृदय परमानंद से लबालब भर गया और प्रेमभाव का उद्रेक चरणों में नतमस्तक होकर गदगद स्वर में प्रभु की इस प्रकार से स्तुति करने लगेः

'प्रभो ! आप प्रकृति आदि समस्त कारणों के परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नाभिकमल से उन ब्रह्माजी का आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत की सृष्टि की है। मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषय और उनके अधिष्ठातृ देवता – यही सब चराचर जगत तथा उसके व्यवहार के कारण हैं और ये सब-के-सब आपके ही अंगस्वरूप हैं। प्रकृति और प्रकृति से उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थ 'इंदवृत्ति' के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, इसलिए ये सब अनात्मा हैं। अनात्मा होने के कारण जड़ हैं और इसलिए अनुक्रम आपका स्वरूप नहीं जान सकते क्योंकि आप तो स्वयं आत्मा ही ठहरे। ब्रह्माजी अवश्य ही आपके स्वरूप हैं। परंतु वे प्रकृति के गुण रजस से युक्त हैं, इसलिए वे भी आपकी प्रकृति का और उसके गुणों से परे का स्वरूप नहीं जानते। साधु योगी स्वयं अपने अंतःकरण में स्थित 'अन्तर्यामी' के रूप में समस्त भूत-भौतिक पदार्थों में व्याप्त 'परमात्मा के रूप में और सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवमण्डल में स्थित 'इष्टदेवता' के रूप में तथा उनके साक्षी महापुरुष एवं नियन्ता ईश्वर के रूप में साक्षात् आपकी ही उपासना करते हैं। बहुत-से कर्मकाण्डी ब्राह्मण कर्ममार्ग का

उपदेश करने वाली त्रयीविद्या के द्वारा, जो आपके इन्द्र, अग्नि आदि अनेक देववाचक नाम तथा वज्रहस्त, सप्तार्चि आदि अनेक रूप बतलाती हैं, बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं और उनसे आपकी ही उपासना करते हैं। बहुत-से ज्ञानी अपने समस्त कर्मों का संन्यास कर देते हैं और शांतभाव में स्थित हो जाते हैं। वे इस प्रकार ज्ञानयज्ञ के द्वारा ज्ञानस्वरूप आपकी ही आराधना करते हैं।

और भी बहुत-से संस्कार-सम्पन्न अथवा शुद्धचित्त वैष्णवजन आपकी बतलायी हुई पांचरात्र आदि विधियों से तन्मय होकर आपके चतुर्व्यूह आदि अनेक और नारायणरूप एक स्वरूप की पूजा करते हैं। भगवन् ! दूसरे लोग शिवजी के द्वारा बतलाये हुए मार्ग से, जिसके आचार्य-भेद से अनेक अवान्तर-भेद भी हैं, शिवस्वरूप आपकी ही पूजा करते हैं। स्वामिन् ! जो लोग दूसरे देवताओं की भक्ति करते हैं और उन्हें आपसे भिन्न समझते हैं, वे सब भी वास्तव में आपकी ही आराधना करते हैं, क्योंकि आप ही समस्त देवताओं के रूप में हैं और सर्वेश्वर भी हैं। प्रभो ! जैसे पर्वतों से सब ओर बहुत-सी नदियाँ निकलती हैं और वर्षा के जल से भरकर घूमती-घामती समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं, वैसे ही सभी प्रकार के उपासना-मार्ग घूम-घामकर देर-सवेर आपके ही पास पहुँच जाते हैं।

प्रभो ! आपकी प्रकृति के तीन गुण हैं – सत्त्व, रज और तम। ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण चराचर जीव प्राकृत हैं और जैसे वस्त्र सूत्रों से ओतप्रोत रहते हैं, वैसे ही ये सब प्रकृति के उन गुणों से ही ओतप्रोत हैं। परंतु आप सर्वस्वरूप होने पर भी उनके साथ लिप्त नहीं हैं। आपकी दृष्टि निर्लिप्त है, क्योंकि आप समस्त वृत्तियों के साक्षी हैं। यह गुणों के प्रवाह से होने वाली सृष्टि अज्ञानमूलक है और वह देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि समस्त योनियों में व्याप्त है, परंतु उससे सर्वथा अलग हैं। इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अग्नि आपका मुख है। पृथ्वी चरण है। सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं। आकाश नाभि है। दिशाएँ कान हैं। स्वर्ग सिर है। देवेन्द्रगण भुजाएँ हैं। समुद्र कोख है यह वायु ही आपकी प्राणशक्ति के रूप मे उपासना के लिए कल्पित हुई है।

वृक्ष और औषधियाँ रोम हैं। मेघ सिर के केश हैं। पर्वत आपके अस्थिसमूह और नख हैं। दिन और रात पलकों का खोलना और मीचना है। प्रजापति जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है। अविनाशी भगवन् ! जैसे जल में बहुत-से जलचर जीव और गूलर के फलों में नन्हें-नन्हें कीट रहते हैं, उसी प्रकार उपासना के लिए स्वीकृत आपके मनोमय पुरुष रूप में अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं से भरे हुए लोक और उनके लोकपाल कल्पित किये गये हैं। प्रभो ! आप क्रीड़ा अनुक्रम करने के लिए पृथ्वी पर जो-जो रूप धारण करते हैं, वे सब अवतार लोगों के शोक-मोह को धो बहा देते हैं और फिर सब लोग बड़े आनन्द से आपके निर्मल यश का गान करते हैं। प्रभो ! आपने वेदों, ऋषियों, औषधियों और सत्यव्रत आदि की रक्षा-दीक्षा के लिए मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलय के समुद्र में स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूप को मैं नमस्कार

करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नाम के असुरों का संहार करने के लिए हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूप को भी नमस्कार करता हूँ।

आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचल को धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वी के उद्धार की लीला करने के लिए वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरे बार-बार नमस्कार। प्रह्लाद जैसे साधुजनों का भेदभय मिटाने वाले प्रभो ! आपके उस अलौकिक नृसिंहरूप को मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगों से तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। धर्म का उल्लंघन करनेवाले घमंडी क्षत्रियों के वन का छेदन कर देने के लिए आपने भृगुपति परशुराम रूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूप को नमस्कार करता हूँ। रावण का नाश करने के लिए आपने रघुवंश में भगवान राम के रूप में अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णवजनों तथा यदुवंशियों का पालन-पोषण करने के लिए आपने ही अपने को वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध – इस चतुर्व्यूह के रूप में प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। दैत्य और दानवों को मोहित करने के लिए आप शुद्ध अहिंसा मार्ग के प्रवर्तक बुद्ध का रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ और पृथ्वी के क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायेंगे, तब उनका नाश करने के लिए आप ही कल्कि के रूप में अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

भगवन् ! ये सब-के-सब जीव आपकी माया से मोहित हो रहे हैं और इस मोह के कारण ही 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इस झूठे दुराग्रह में फँसकर कर्म के मार्गों में भटक रहे हैं। मेरे स्वामी ! इसी प्रकार मैं भी स्वप्न में दिखने वाले पदार्थों के समान झूठे देह-गेह, पत्नी-पुत्र और धन-स्वजन आदि को सत्य समझकर उन्हीं के मोह में फँस रहा हूँ और भटक रहा हूँ।

मेरी मूर्खता तो देखिये, प्रभो ! मैंने अनित्य वस्तुओं को नित्य, अनात्मा को आत्मा और दुःख को सुख समझ लिया। भला, इस उलटी बुद्धि की भी कोई सीमा है ! इस प्रकार अज्ञानवश सांसारिक सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में ही रम गया और यह बात बिल्कुल भूल गया कि आप ही हमारे सच्चे प्यारे हैं। जैसे कोई अनजान मनुष्य जल के लिए तालाब पर जाय और उसे उसी से पैदा हुए सिवार आदि घासों से ढका देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं हैं तथा सूर्य की किरणों में झूठ-मूठ प्रतीत होने वाले जल के लिए मृगतृष्णा की ओर दौड़ पड़े, वैसे ही मैं अपनी ही माया से छिपे रहने के कारण आपको छोड़कर विषयों में सुख की आशा से भटक रहा हूँ।

मैं अविनाशी अक्षर वस्तु के ज्ञान से रहित हूँ। इसी से मेरे मन में अनेक वस्तुओं की कामना और उनके लिए कर्म करने के संकल्प उठते ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियाँ भी अनुक्रम जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय हैं, मन को मथ-मथकर बलपूर्वक इधर-उधर घसीट ले जाती

हैं। इसीलिए इस मन को मैं रोक नहीं पाता। इस प्रकार भटकता हुआ मैं आपके उन चरणकमलों की छत्रछाया में आ पहुँचा हूँ, जो दुष्टों के लिए दुर्लभ है। मेरे स्वामी ! इसे भी मैं आपका कृपाप्रसाद ही मानता हूँ क्योंकि पद्मनाभ ! जब जीव के संसार से मुक्त होने का समय आता है, तब सत्पुरुषों की उपासना से चित्तवृत्ति आपमें लगती है।

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे।

पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।।

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च।

हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो।

प्रभो ! आप केवल विज्ञानस्वरूप हैं, विज्ञानघन हैं। जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, जितनी भी वृत्तियाँ हैं, उन सबके आप ही कारण और अधिष्ठान हैं। जीव के रूप में एवं जीवों के सुख-दुःख आदि के निमित्त काल, कर्म, स्वभाव तथा प्रकृति के रूप में भी आप ही हैं तथा आप ही उन सबके नियन्ता भी हैं। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

प्रभो ! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवों के आश्रय (संकर्षण) हैं तथा आप ही बुद्धि और मन के अधिष्ठातृ देवता हृषिकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो ! आप मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए।'

(श्रीमद् भागवतः 10.40.1-30)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

नारदजी द्वारा स्तुति

देवर्षि नारद भगवान के परम प्रेमी और समस्त जीवों के सच्चे हितैषी हैं भगवान | श्रीकृष्ण द्वारा केशी असुर का वध किये जाने पर नारद जी कंस के यहाँ से लौटकर अनायास ही अदभुत कर्म करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के पास आये और एकान्त में उनकी इस प्रकार से स्तुति करने लगेः

'सच्चिदानंदस्वरूप श्री कृष्ण ! आपका स्वरूप मन और वाणी का विषय नहीं है। आप योगेश्वर हैं। सारे जगत का नियंत्रण आप ही करते हैं। आप सबके हृदय में निवास करते हैं और सब-के-सब आपके हृदय में निवास करते हैं। आप भक्तों के एकमात्र वांछनीय, यदुवंश शिरोमणि और हमारे स्वामी हैं। जैसे एक ही अग्नि सभी लकड़ियों में व्याप्त रहती है, वैसे एक ही आप समस्त प्राणियों के आत्मा हैं। आत्मा के रूप में होने पर भी आप अपने को छिपाये रखते हैं क्योंकि आप पंचकोशरूप गुफाओं के भीतर रहते हैं। फिर भी पुरुषोत्तम के रूप में, सबके नियन्ता के रूप में और सबके साक्षी के रूप में आपका अनुभव होता ही है। प्रभो ! आप सबके अधिष्ठान अनुक्रम और स्वयं अधिष्ठानरहित हैं। आपने सृष्टि के प्रारम्भ में अपनी माया से ही गुणों की सृष्टि की और उन गुणों को ही स्वीकार करके आप जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं। यह सब करने के लिए आपको अपने से अतिरिक्त और किसी भी वस्तु की आवश्यकता नही है। क्योंकि आप सर्वशक्तिमान और सत्यसंकल्प हैं। वही आप दैत्य, प्रमथ और राक्षसों का, जिन्होंने आजकल राजाओं का वेष धारण कर रखा है, विनाश करने के लिए तथा धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करने के लिए यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं। यह बड़े आनंद की बात है कि आपने खेल-ही-खेल में घोड़े के रूप में रहने वाले इस केशी दैत्य को मार डाला। इसकी हिनहिनाहट से डरकर देवता लोग अपना स्वर्ग छोड़कर भाग जाया करते थे।

प्रभो ! अब परसों मैं आपके हाथों चाणूर, मुष्टिक, दूसरे पहलवान, कुवलयापीड हाथी और स्वयं कंस को मरते हुए देखूँगा। उसके बाद शंखासुर, कालयवन, मुर और नरकासुर का वध देखूँगा। आप स्वर्ग से कल्पवृक्ष उखाड़ लायेंगे और इन्द्र के चीं-चपड़ करने पर उनको उसका मजा चखायेंगे। आप अपनी कृपा, वीरता, सौन्दर्य आदि का शुल्क देकर वीर-कन्याओं से विवाह करेंगे और जगदीश्वर ! आप द्वारिका में रहते हुए नृग को पाप से छुड़ायेंगे। आप जाम्बवती के साथ स्यमन्तक मणि को जाम्बवान से ले आयेंगे और अपने धाम से ब्राह्मण के मरे पुत्रों को ला देंगे।

इसके पश्चात् आप पौण्ड्रक-मिथ्या वासुदेव का वध करेंगे। काशीपुरी को जला देंगे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिराज शिशुपाल को, वहाँ से लौटते समय उसके मौसेरे भाई दन्तवक्त्र को नष्ट करेंगे। प्रभो ! द्वारिका में निवास करते समय आप और भी बहुत-से पराक्रम प्रकट करेंगे, जिन्हें आगे चलकर पृथ्वी के बड़े-बड़े ज्ञानी और प्रतिभाशाली पुरुष गायेंगे। मैं वह सब देखूँगा। इसके बाद आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए काल रूप से अर्जुन के सारथि बनेंगे और अनेक अक्षौहिणी सेना का संहार करेंगे। यह सब मैं अपनी आँखों से देखूँगा।

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवांछितम्।

स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायागुणप्रवाहं भगवन्तमीमहिं।।

प्रभो ! आप विशुद्ध विज्ञानघन हैं। आपके स्वरूप में और किसी का अस्तित्व है ही नहीं। आप नित्य-निरन्तर अपने परमानन्दस्वरूप में स्थित रहते हैं। इसलिए ये सारे पदार्थ आपको नित्य प्राप्त ही हैं। आपका संकल्प अमोघ है। आपकी चिन्मयी शक्ति के सामने माया और माया से होने वाला वह त्रिगुणमय संसारचक्र नित्यनिवृत्त है, कभी हुआ ही नहीं। ऐसे आप अखण्ड, एकरस, सच्चिदानंदस्वरूप, निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

(श्रीमद् भागवतः 10.37.23)

आप सबके अंतर्यामी और नियन्ता हैं। अपने-आप में स्थित, परम स्वतन्त्र है। जगत और, उसके अशेष-विशेषों, भाव-अभावरूप सारे भेद-विभेदों की कल्पना केवल आपकी माया से ही हुई अनुक्रम है। इस समय आपने अपनी लीला प्रकट करने के लिए मनुष्य का सा श्रीविग्रह प्रकट किया है और आप यदु, वृष्णि तथा सात्वतवंशियों के शिरोमणि बने हैं। प्रभो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

(श्रीमद् भागवतः 10.37,11-24)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दक्ष प्रजापति द्वारा स्तुति

दक्ष प्रजापति ने जल, थल और आकाश में रहने वाले देवता, असुर एवं मनुष्य आदि प्रजा की सृष्टि अपने संकल्प से की थी। परंतु जब उन्होंने देखा कि वह सृष्टि बढ़ नहीं रही है, तब उन्होंने विन्ध्याचल के निकटवर्ती पर्वतों पर जाकर 'अघमर्षण' नामक श्रेष्ठ तीर्थ में घोर तपस्या की तथा प्रजावृद्धि की कामना से इन्द्रियातीत भगवान की 'हंसगुह्य' नामक स्तोत्र से स्तुति की, जो इस प्रकार हैः

'भगवन् ! आपकी अनुभूति, आपकी चित्-शक्ति अमोघ है। आप जीव और प्रकृति से परे, उनके नियन्ता और उन्हें सत्ता-स्फूर्ति देने वाले हैं। जिन जीवों ने त्रिगुणमयी सृष्टि को ही वास्तविक सत्य समझ रखा है, वे आपके स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर सके हैं, क्योंकि आप तक किसी भी प्रमाण की पहुँच नहीं है। आपकी कोई अवधि, कोई सीमा नहीं है।

आप स्वयं प्रकाश और परात्पर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। यों तो जीव और ईश्वर एक-दूसरे से सखा हैं तथा इसी शरीर में इकट्ठे ही निवास करते हैं, परंतु जीव सर्वशक्तिमान आपके सख्यभाव को नहीं जानता। ठीक वैसे ही, जैसे – रूप, रस, गंध आदि विषय अपने प्रकाशित करने वाली नेत्र, घ्राण आदि इन्द्रियवृत्तियों को नहीं जानते। क्योंकि आप जीव और जगत के द्रष्टा हैं, दृश्य नहीं। महेश्वर ! मैं आपके श्रीचरणों में नमस्कार करता हूँ। देह, प्राण, इन्द्रिय, अंतःकरण की वृत्तियाँ, पंचमहाभूत और इनकी तन्मात्राएँ – ये सब जड़ होने के कारण अपने को और अपने से अतिरिक्त को भी नहीं जानते। परंतु जीव इन सबको और इनके कारण सत्त्व, रज और तम – इन तीन गुणों को भी जानता है। परंतु वह भी दृश्य अथवा ज्ञेयरूप से आपको नहीं जान सकता क्योंकि आप ही सबके ज्ञाता और अनन्त हैं। इसलिए प्रभो ! मैं तो केवल आपकी स्तुति करता हूँ। जब समाधिकाल में प्रमाण, विकल्प और विपर्यरूप विविध ज्ञान और स्मरणशक्ति का लोप हो जाने से इस नाम-रूपात्मक जगत का निरूपण करने वाला मन उपरत हो जाता है, उस समय बिना मन के भी केवल सच्चिदानंदमयी अपनी स्वरूपस्थिति के द्वारा आप प्रकाशित होते रहते हैं। प्रभो ! आप शुद्ध हैं और शुद्ध हृदय-मन्दिर ही आपका निवास स्थान है। आपको मेरा नमस्कार है। जैसे याज्ञिक लोग काष्ठ में छिपी हुई अग्नि को 'सामिधेनी' नाम के पन्द्रह मन्त्रों के द्वारा प्रकट करते हैं, वैसे ही ज्ञानी पुरुष अपनी सत्ताइस शक्तियों के भीतर गूढ भाव से छिपे हुए आपको अपनी शुद्ध बुद्धि के द्वारा हृदय में ही ढूँढ निकालते हैं। जगत अनुक्रम में जितनी भिन्नताएँ दीख पड़ती हैं वे सब माया की ही हैं। माया का निषेध कर देने पर केवल परम सुख के साक्षात्कारस्वरूप आप ही अवशेष रहते हैं। परंतु जब विचार करने लगते हैं, तब आपके स्वरूप में माया की उपलब्धि-निर्वचन नहीं हो सकता अर्थात् माया भी आप ही हैं। अतः सारे नाम और सारे रूप आपके ही हैं। प्रभो ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये। मुझे आत्मप्रसाद से पूर्ण कर दीजिये। प्रभो ! जो कुछ वाणी से कहा जाता है अथवा जो कुछ मन, बुद्धि और इन्द्रियों से ग्रहण किया जाता है वह आपका स्वरूप नहीं है, क्योंकि वह तो गुणरूप है और आप गुणों की उत्पत्ति और प्रलय के अधिष्ठान हैं। आप में केवल उनकी प्रतीतिमात्र है। भगवन् ! आप में ही यह सारा जगत स्थित है, आप से ही निकला है और आपने और किसी के सहारे नहीं अपने-आप से ही इसका निर्माण किया है। यह आपका ही है और आपके लिए ही है। इसके रूप में बनने वाले भी आप हैं और बनानेवाले भी आप ही हैं। बनने-बनाने की विधि भी आप ही हैं। आप ही सबसे काम लेने वाले भी हैं। जब कार्य और कारण का भेद नहीं था, तब भी आप स्वयंसिद्ध स्वरूप से स्थित थे। इसी से आप सबके कारण भी हैं। सच्ची बात तो यह है कि आप जीव जगत के भेद और स्वगतभेद से सर्वथा रहित एक, अद्वितीय हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हों।

प्रभो ! आपकी ही शक्तियाँ वादी-प्रतिवादियों के विवाद और संवाद (एकमत्य) का विषय होती हैं और उन्हें बार-बार मोह में डाल दिया करती हैं। आप अनन्त अप्राकृत कल्याण-गुणगणों से युक्त एवं स्वयं अनन्त हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भगवन् ! उपासक लोग कहते हैं कि हमारे प्रभु हस्त-पादादि से युक्त साकार-विग्रह हैं और सांख्यवादी कहते हैं की भगवान हस्त-पादादि विग्रह से रहित निराकार हैं। यद्यपि इस प्रकार वे एक ही वस्तु के दो परस्पर विरोधी धर्मों का वर्णन करते हैं, परन्तु फिर भी उसमें विरोध नहीं है। क्योंकि दोनों एक ही परम वस्तु में स्थित हैं। बिना आधार के हाथ-पैर आदि का होना सम्भव नहीं और निषेध की भी कोई-न-कोई अवधि होनी ही चाहिए। आप वही आधार और निषेध की अवधि हैं। इसलिए आप साकार, निराकार दोनों से ही अविरुद्ध सम परब्रह्म हैं।

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननन्तः।

नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु।।

प्रभो ! आप अनन्त हैं। आपका न तो कोई प्राकृत नाम है और न कोई प्राकृत रूप, फिर भी जो आपके चरणकमलों का भजन करते हैं, उन पर अनुग्रह करने के लिए आप अनेक रूपों में प्रकट होकर अनेकों लीलाएँ करते हैं तथा उन-उन रूपों एवं लीलाओं के अनुसार अनेकों नाम धारण कर लेते हैं। परमात्मन् ! आप मुझ पर कृपा-प्रसाद कीजिए।

(श्रीमद् भागवतः 6.4.33)

लोगों की उपासनाएँ प्रायः साधारण कोटि की होती हैं। अतः आप सबके हृदय में रहकर उनकी भावना के अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं के रूप में प्रतीत होते रहते हैं, ठीक वैसे ही जैसे हवा गन्ध का आश्रय लेकर सुगन्धित प्रतीत होती है, परंतु वास्तव में सुगन्धित नहीं होती। ऐसे सबकी भावनाओं का अनुसरण करने वाली प्रभु मेरी अभिलाषा पूर्ण करें।' अनुक्रम

(श्रीमद् भागवतः 6.4.23-34)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

देवताओं द्वारा गर्भ-स्तुति

जब-जब पृथ्वी पर धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होती है भगवान पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। मथुरा नगरी में कंस के अत्याचार प्रजाजन पर दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे और वह

यदुवंशियों को भी नष्ट करता जा रहा था। भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण ने असुरों के विनाश हेतु पृथ्वी पर अवतार लेने के लिए वसुदेव-पत्नी देवकी के गर्भ में प्रवेश किया और तभी देवकी के शरीर की कांति से कंस का बंदीगृह जगमगाने लगा। भगवान शंकर, ब्रह्माजी, देवर्षि नारद तथा अन्य देवता कंस के कारागार में आकर सबकी अभिलाषा पूर्ण करने वाले प्रभु श्रीहरि की सुमधुर वचनों से इस प्रकार स्तुति करते हैं-

'प्रभो ! आप सत्यसंकल्प है। सत्य ही आपकी प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है। सृष्टि के पूर्व, प्रलय के पश्चात् और संसार की स्थिति के समय – इन असत्य अवस्थाओं में भी आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश – इन पाँच दृश्यमान सत्यों के आप ही कारण हैं और उनमें अन्तर्यामी रूप से विराजमान भी हैं। आप इस दृश्यमान जगत के परमार्थरूप हैं। आप ही मधुर वाणी और समदर्शन के प्रवर्तक हैं। भगवन् ! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं। हम सब आपकी शरण में आये हैं। यह संसार क्या है, एक सनातन वृक्ष। इस वृक्ष का आश्रय है एक प्रकृति। इसके दो फल हैं – सुख और दुःख, तीन जड़े हैं सत्त्व, रज और तम, चार रस हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसके जानने के पाँच प्रकार हैं – श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका। इसके छः स्वभाव हैं – पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट हो जाना। इस वृक्ष की छाल है सात धातुएँ – रस, रूधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। आठ शाखाएँ हैं – पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहंकार। इसमें मुख आदि नवों द्वार खोडर हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय – ये दस प्राण ही इसके दस पत्ते हैं। इस संसार रूप वृक्ष की उत्पत्ति के आधार एकमात्र आप ही हैं। आप में ही इसका प्रलय होता है और आपके ही अनुग्रह से इसकी रक्षा भी होती है। जिनका चित्त आपकी माया से आवृत्त हो रहा है, इस सत्य को समझने की शक्ति खो बैठा है – वे ही उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले ब्रह्मादि देवताओं को अनेक देखते हैं। तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सबके रूप में केवल आपके ही दर्शन करते हैं।

आप ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। चराचर जगत के कल्याण के लिए ही अनेकों रूप धारण करते हैं। आपके वे रूप विशुद्ध, अप्राकृत, सत्त्वमय होते हैं और संतपुरुषों को बहुत सुख देते हैं। साथ ही दुष्टों को उनकी दुष्टता का दण्ड भी देते हैं। उनके लिए अमंगलमय भी होते हैं। अनुक्रम

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके।

त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम्।।

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः।

भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान्।।

कमल के समान कोमल अनुग्रह-भरे नेत्रों वाले प्रभो ! कुछ विरले लोग ही आपके समस्त पदार्थों और प्राणियों के आश्रयस्वरूप रूप में पूर्ण एकाग्रता से अपना चित्त लगा पाते हैं और आपके चरणकमलरूपी जहाज का आश्रय लेकर इस संसारसागर को बछड़े के खुर के गढ़े के समान अनायास ही पार कर जाते हैं। क्यों न हो, अब तक के संतों ने इसी जहाज से संसारसागर को पार जो किया है।

परम प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आपके भक्तजन सारे जगत के निष्कपट प्रेमी, सच्चे हितैषी होते हैं। वे स्वयं तो इस भयंकर और कष्ट से पार करने योग्य संसारसागर को पार कर ही जाते हैं, किंतु औरों के कल्याण के लिए भी वे यहाँ आपके चरणकमलों की नौका स्थापित कर जाते हैं। वास्तव में सत्पुरुषों पर आपकी महान कृपा है। उनके लिए आप अनुग्रहस्वरूप ही हैं।

(श्रीमद् भागवतः 10.2.30.31)

कमलनयन ! जो लोग आपके चरणकमलों की शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्तिभाव से रहित होने के कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपने को झूठ-मूठ मुक्त मानते हैं। वास्तव में तो वे बद्ध ही हैं। वे यदि बड़ी तपस्या और साधना का कष्ट उठाकर किसी प्रकार ऊँचे-से-ऊँचे पद पर भी पहुँच जायें तो भी वहाँ से नीचे गिर जाते हैं।

परंतु भगवन् ! जो आपके निज जन है, जिन्होंने आपके चरणों में अपनी सच्ची प्रीति जोड़ रखी है, वे कभी उन ज्ञानाभिमानियों की भाँति अपने साधन मार्ग से गिरते नहीं। प्रभो ! वे बड़े-बड़े विघ्न डालने वालों की सेना के सरदारों के सिर पर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं, कोई भी विघ्न उनके मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकता; क्योंकि उनके रक्षक आप जो हैं।

आप संसार की स्थिति के लिए समस्त देहधारियों को परम कल्याण प्रदान करने वाले विशुद्ध सत्त्वमय, सच्चिदानंदमय परम दिव्य मंगल-विग्रह प्रकट करते हैं। उस रूप के प्रकट होने से ही आपके भक्त वेद, कर्मकाण्ड, अष्टाँग-योग, तपस्या और समाधि के द्वारा आपकी आराधना करते हैं। बिना किसी आश्रय के वे किसकी आराधना करेंगे? प्रभो ! आप सबके विधाता हैं। यदि आपका यह विशुद्ध सत्त्वमय निज स्वरूप न हो तो अज्ञान और उसके द्वारा होने वाले भेदभाव को नष्ट करने वाला अपरोक्ष ज्ञान ही किसी को न हो। जगत में दिखने वाले तीनों गुण आपके हैं और आपके द्वारा ही प्रकाशित होते हैं, यह सत्य है। परंतु इन गुणों की प्रकाशक वृत्तियों से आपके स्वरूप का केवल अनुमान ही होता है, वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता।

(आपके स्वरूप का साक्षात्कार तो आपके इस विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूप की सेवा करने पर आपकी कृपा से ही होता है।) भगवन् ! मन और वेद-वाणी के द्वारा केवल आपके स्वरूप का अनुमानमात्र होता है क्योंकि आप उनके द्वारा दृश्य नहीं; उनके साक्षी हैं। इसलिए आपके गुण, जन्म और कर्म अनुक्रम आदि के द्वारा आपके नाम और रूप का निरूपण नहीं किया जा सकता। फिर भी प्रभो ! आपके भक्तजन उपासना आदि क्रियायोगों के द्वारा आपका साक्षात्कार तो करते ही हैं। **जो पुरुष आपके मंगलमय नामों और रूपों का श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करता है और आपके चरणकमलों की सेवा में ही अपना चित्त लगाये रहता है, उसे फिर जन्म-मृत्युरूप संसार के चक्र में नहीं आना पड़ता।** सम्पूर्ण दुःखों के हरने वाले भगवन् ! आप सर्वेश्वर है। यह पृथ्वी तो आपका चरणकमल ही है। आपके अवतार से इसका भार दूर हो गया। धन्य है ! प्रभो ! हमारे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हम लोग आपके सुन्दर-सुन्दर चिह्नों से युक्त चरणकमलों के द्वारा विभूषित पृथ्वी को देखेंगे और स्वर्गलोक को भी आपकी कृपा से कृतार्थ देखेंगे। प्रभों ! आप अजन्मा हैं। यदि आपके जन्म के कारण के सम्बन्ध में हम कोई तर्क न करें तो यही कह सकते है कि यह आपका एक लीला-विनोद है। ऐसा करने का कारण यह है कि आप द्वैत के लेश से रहित सर्वाधिष्ठानस्वरूप हैं और इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय अज्ञान के द्वारा आप में आरोपित हैं।

प्रभो ! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वाराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हम लोगों की और तीनों लोकों की रक्षा की है, वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वी का भार हरण कीजिये। यजुनन्दन ! हम आपके चरणों में वन्दना करते हैं।

(श्रीमद् भागवतः 10.2.26-40)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

वेदों द्वारा स्तुति

जिस प्रकार प्रातःकाल होने पर सोते हुए सम्राट को जगाने हेतु अनुजीवी बंदीजन सम्राट के पराक्रम और सुयश का गान करके उसे जगाते हैं, वैसे ही जब परमात्मा अपने बनाये हुए सम्पूर्ण जगत को अपने में लीन करके आत्मारमण के हेतु योगनिद्रा स्वीकार करते हैं। तब प्रलय के अंत में श्रुतियाँ उनका इस प्रकार से यशोगान कर जगाती हैं। वेदों के तात्पर्य-दृष्टि से 28 भेद हैं, अतः यहाँ 28 श्रुतियों ने 28 श्लोकों से प्रभु की इस प्रकार से स्तुति की हैः

'अजित ! आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं, आप पर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता। आपकी जय हो, जय हो। प्रभो ! आप स्वभाव से ही समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं, इसलिए चराचर प्राणियों को फँसाने वाली माया का नाश कर दीजिये। प्रभो ! इस गुणमयी माया ने दोष के लिए जीवों के आनंदादिमय सहज स्वरूप का आच्छादन करके उन्हें बंधन में डालने के लिए ही सत्त्वादि गुणों को ग्रहण किया है। जगत में जितनी साधना, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियाँ हैं, उन सबको जगानेवाले आप ही हैं। इसलिए आपको मिटाए बिना यह माया मिट नही सकती। (इस विषय में यदि प्रमाण पूछा जाये तो आपकी श्वासभूता श्रुतियाँ ही – हम प्रमाण हैं।) यद्यपि हम आपका अनुक्रम स्वरूपतः वर्णन करने में असमर्थ हैं, परंतु जब कभी आप माया के द्वारा जगत की सृष्टि करके सगुण हो जाते हैं या उसको निषेध करके स्वरूपस्थिति की लीला करते हैं अथवा अपना सच्चिदानंदस्वरूप श्रीविग्रह प्रकट करके क्रीड़ा करते हैं, तभी हम यत्किंचित् आपका वर्णन करने में समर्थ होती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे द्वारा इन्द्र, वरूण आदि देवताओं का भी वर्णन किया जाता है, परंतु हमारे (श्रुतियों के) सारे मंत्र अथवा सभी मंत्रद्रष्टा ऋषि, प्रतीत होने वाले इस सम्पूर्ण जगत को ब्रह्मस्वरूप ही अनुभव करते हैं। क्योंकि जिस समय यह सारा जगत नहीं रहता, उस समय भी आप बच रहते हैं। जैसे घट, शराव (मिट्टी का प्याला, कसोरा) आदि सभी विकार मिट्टी से ही उत्पन्न और उसी में लीं होते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति और प्रलय आप में ही होती है, तब क्या आप पृथ्वी के समान विकारी हैं ? नहीं-नहीं, आप तो एकरस-निर्विकार हैं। इसी से तो यह जगत आप में उत्पन्न नहीं, प्रतीत है। इसलिए जैसे घट, शराव आदि का वर्णन भी मिट्टी का ही वर्णन है, वैसे ही इन्द्र, वरुण आदि देवताओं का वर्णन भी आपका ही वर्णन है । यही कारण है कि विचारशील ऋषि, मन से जो कुछ सोचा जाता है और वाणी से जो कुछ कहा जाता है, उसे आप में ही स्थित, आपका ही स्वरूप देखते हैं। मनुष्य अपना पैर चाहे कहीं भी रखे, ईंट, पत्थर या काठ पर होगा वह पृथ्वी पर ही, क्योंकि वे सब पृथ्वीस्वरूप ही हैं। इसलिए हम चाहे जिस नाम या जिस रूप का वर्णन करें, वह आपका ही नाम, आपका ही रूप है।

भगवन् ! लोग सत्त्व, रज, तम – इन तीन गुणों की माया से बने हुए अच्छे-बुरे भावों या अच्छी-बुरी क्रियाओं में उलझ जाया करते हैं, परंतु आप तो उस माया नटी के स्वामी, उसको नचाने वाले हैं। इसीलिए विचारशील पुरुष आपकी लीलाकथा के अमृतसागर में गोते लगाते रहते हैं और इस प्रकार अपने सारे पाप-ताप को धो-बहा देते हैं। क्यों न हो, आपकी लीला-कथा सभी जीवों के मायामल को नष्ट करने वाली जो है। पुरुषोत्तम ! जिन महापुरुषों ने आत्मज्ञान के द्वारा अंतःकरण के राग-द्वेष आदि और शरीर के कालकृत जरा-मरण आदि दोष मिटा दिये हैं और निरन्तर आपके उस स्वरूप की अनुभूति में मग्न रहते हैं, जो अखण्ड आनंदस्वरूप है, उन्होंने

अपने पाप-तापों को सदा के लिए शांत, भस्म कर दिया है, इसके विषय में तो कहना ही क्या है !

भगवन् ! प्राणधारियों के जीवन की सफलता इसी में है कि वे आपका भजन-सेवा करें, आपकी आज्ञा का पालन करें; यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनका जीवन व्यर्थ है और उनके शरीर में श्वास का चलना ठीक वैसा ही है, जैसा लुहार की धौंकनी मे हवा का आना-जाना। महत्तत्त्व, अहंकार आदि ने आपके अनुग्रह से – आपके उनमें प्रवेश करने पर ही इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय – इन पाँचों कोशों में पुरुषरूप से रहने वाले, उनमें 'मैं-मैं' की स्फूर्ति करने वाले भी आप ही हैं? आपके ही अस्तित्व से उन कोशों के अस्तित्व का अनुभव होता है और उनके न रहने पर भी अन्तिम अवधिरूप से आप विराजमान रहते हैं। इस प्रकार सबमें अन्वित और सबकी अवधि होने पर भी आप असंग ही हैं। क्योंकि वास्तव मे जो कुछ वृत्तियों के द्वारा अस्ति अथवा नास्ति के रूप में अनुभव होता है, उन अनुक्रम समस्त कार्य-कारणों से आप परे हैं। 'नेति-नेति' के द्वारा इन सबका निषेध हो जाने पर भी आप ही शेष रहते हैं, क्योंकि आप उस निषेध के भी साक्षी हैं और वास्तव में आप ही एकमात्र सत्य हैं। (इसलिए आपके भजन के बिना जीव का जीवन व्यर्थ ही है; क्योंकि वह इस महान सत्य से वंचित है)।

ऋषियों ने आपकी प्राप्ति के लिए अनेकों मार्ग माने हैं। उनमें जो स्थूल दृष्टिवाले हैं, वे मणिपुर चक्र में अग्निरूप से आपकी उपासना करते हैं। अरुण वंश के ऋषि समस्त नाड़ियों के निकलने के स्थान हृदय में आपके परम सूक्ष्म स्वरूप दहर ब्रह्म की उपासना करते हैं। प्रभो ! हृदय से ही आपको प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरन्ध्र तक गयी हुई है। जो पुरुष उस ज्योतिर्मय मार्ग को प्राप्त कर लेता है और उससे ऊपर की ओर बढ़ता है, वह फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं पड़ता। भगवन् ! आपने ही देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि योनियाँ बनायी हैं। सदा-सर्वत्र सब रूपों में आप हैं ही, इसलिए कारणरूप से प्रवेश न करने पर भी आप ऐसे जान पड़ते हैं मानों, उसमें प्रविष्ट हुए हों। साथ ही विभिन्न आकृतियों का अनुकरण करके कहीं उत्तम तो कहीं अधमरूप से प्रतीत होते है, जैसे आग छोटी-बड़ी लकड़ियों और कर्मों के अनुसार प्रचुर अथवा अल्प परिमाण में या उत्तम-अधमरूप में प्रतीत होती है। इसलिए संतपुरुष लौकिक-पारलौकिक कर्मों की दुकानदारी से, उनके फलों से विरक्त हो जाते हैं और अपनी निर्मल बुद्धि से सत्य-असत्य, आत्मा-अनात्मा को पहचानकर जगत के झूठे रूपों में नहीं फँसते; आपके सर्वत्र एकरस, समभाव से स्थित सत्यस्वरूप का साक्षात्कार करते हैं।

प्रभो ! जीव जिन शरीरों में रहता है, वे उसके कर्म के द्वारा निर्मित होते हैं और वास्तव में उन शरीरों के कार्य-कारणरूप आवरणों से वह रहित है, क्योंकि वस्तुतः उन आवरणों की सत्ता

ही नहीं है। तत्त्वज्ञानी पुरुष ऐसा कहते हैं कि समस्त शक्तियों को धारण करने वाले आपका ही वह स्वरूप है। स्वरूप होने के कारण अंश न होने पर भी उसे अंश कहते हैं और निर्मित न होने पर भी निर्मित कहते हैं। इसी से बुद्धिमान पुरुष जीव के वास्तविक स्वरूप पर विचार करके परम विश्वास के साथ आपके चरणकमलों की उपासना करते हैं। क्योंकि आपके चरण ही समस्त वैदिक कर्मों के समर्पणस्थान और मोक्षस्वरूप हैं।

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः।

न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः।।

भगवन् ! परमात्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। उसी का ज्ञान कराने के लिए आप विविध प्रकार के अवतार ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा ऐसी लीला करते हैं, जो अमृत के महासागर से भी मधुर और मादक होती है। जो लोग उसका सेवन करते हैं, उनकी सारी थकावट दूर हो जाती है, वे परमानन्द से मग्न हो जाते हैं। कुछ प्रेमी भक्त तो ऐसे होते हैं, जो आपकी लीला-कथाओं को छोड़कर मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं करते स्वर्ग आदि की तो बात अनुक्रम ही क्या है। वे आपके चरणकमलों के प्रेमी परमहंसों के सत्संग में, जहाँ आपकी कथा होती है, इतना सुख मानते हैं कि उसके लिए इस जीवन में प्राप्त अपनी घर-गृहस्थी का भी परित्याग कर देते हैं।

(श्रीमद् भागवतः 10.87.21)

प्रभो ! यह शरीर आपकी सेवा का साधन होकर जब आपके पथ का अनुरागी हो जाता है, तब आत्मा, हितैषी, सुहृद और प्रिय व्यक्ति के समान आचरण करता है। **आप जीव के हितैषी, प्रियतम और आत्मा ही हैं और सदा-सर्वदा जीव को अपनाने के लिए तैयार भी रहते हैं।** इतनी सुगमता होने पर तथा अनुकूल मानव शरीर पाकर भी लोग सख्यभाव आदि के द्वारा आपकी उपासना नहीं करते, आप में नहीं रमते, बल्कि इस विनाशी और असत् शरीर तथा उसके सम्बन्धियों में ही रम जाते हैं, उन्हीं की उपासना करने लगते हैं और इस प्रकार अपने आत्मा का हनन करते हैं, उसे अधोगति में पहुँचाते हैं। भला, यह कितने कष्ट की बात है ! इसका फल यह होता है कि उनकी सारी वृत्तियाँ, सारी वासनाएँ शरीर आदि में ही लग जाती हैं और फिर उनके अनुसार उनको पशु-पक्षी आदि के न जाने कितने बुरे-बुरे शरीर ग्रहण करने पड़ते हैं और इस प्रकार अत्यंत भयावह जन्म-मृत्युरूप संसार में भटकना पड़ता है।

निभृतमरून्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।

स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समादृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः।।

प्रभो ! बड़े-बड़े विचारशील योगी-यति अपने प्राण, मन और इन्द्रियों को वश में करके दृढ योगाभ्यास के द्वारा हृदय में आपकी उपासना करते हैं। परंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्हें जिस पद की प्राप्ति होती है, उसी की प्राप्ति उन शत्रुओं को भी हो जाती है, जो आपसे वैर-भाव रखते हैं। क्योंकि स्मरण तो वे भी करते ही हैं। कहाँ तक कहें, भगवन् ! वे स्त्रियाँ. जो अज्ञानवश आपको परिच्छिन्न मानती हैं और आपकी शेषनाग के समान मोटी, लंबी तथा सुकुमार भुजाओं के प्रति कामभाव से आसक्त रहती हैं, जिस परम पद को प्राप्त करती हैं, वही पद हम श्रुतियों को भी प्राप्त होता है। यद्यपि हम आपको सदा-सर्वदा एकरस अनुभव करती हैं और आपके चरणारविन्द का मकरन्द रस पान करती रहती हैं। क्यों न हो, आप समदर्शी जो हैं। आपकी दृष्टि में उपासक के परिच्छिन्न या अपरिच्छिन्न भाव में कोई अन्तर नहीं है।

(श्रीमद् भागवतः 10.87.23)

भगवन् ! आप अनादि और अनन्त हैं। जिसका जन्म और मृत्यु काल से सीमित है, वह भला, आपको कैसे जान सकता है। स्वयं ब्रह्माजी, निवृत्तिपरायण सनकादि तथा प्रवृत्तिपरायण मरीचि आदि भी बहुत पीछे आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। जिस समय आप सबको समेटकर सो जाते हैं, उस समय ऐसा कोई साधन नहीं रह जाता, जिससे उनके साथ ही सोया हुआ जीव आपको जान सके, क्योंकि उस समय न तो आकाशादि स्थूल जगत रहता है न तो महत्तत्त्वादि सूक्ष्म जगत। इन दोनों से बने हुए शरीर और उनके निमित्त क्षण-मुहूर्त आदि काल के अंग भी अनुक्रम नहीं रहते। उस समय कुछ भी नहीं रहता। यहाँ तक की शास्त्र भी आपमें ही समा जाते हैं। (ऐसी अवस्था में आपको जानने की चेष्टा न करके आपका भजन करना ही सर्वोत्तम मार्ग है।) प्रभो ! कुछ लोग मानते हैं कि असत् जगत की उत्पत्ति होती है और कुछ कहते हैं कि सत्-रूप दुःखों का नाश होने पर मुक्ति मिलती है। दूसरे लोग आत्मा को अनेक मानते हैं तो कई लोग कर्म के द्वारा प्राप्त होने वाले लोक और परलोकरूप व्यवहार को सत्य मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये सभी बातें भ्रममूलक हैं और वे आरोप करके ही ऐसा उपदेश करते हैं। पुरुष त्रिगुणमय है। इस प्रकार का भेदभाव केवल अज्ञान से ही होता है और आप अज्ञान से सर्वथा परे हैं। इसलिए ज्ञानस्वरूप आपमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है।

यह त्रिगुणात्मक जगत मन की कल्पनामात्र है। केवल यही नहीं, परमात्मा और जगत से पृथक् प्रतीत होने वाला पुरुष भी कल्पनामात्र ही है। इस प्रकार वास्तव में असत् होने पर भी अपने सत्य अधिष्ठान आपकी सत्ता के कारण यह सत्य-सा प्रतीत हो रहा है। इसलिए भोक्ता, भोग्य और दोनों के सम्बन्ध को सिद्ध करने वाली इन्द्रियाँ आदि जितना भी जगत है, सबको

आत्मज्ञानी पुरुष आत्मरूप से सत्य ही मानते हैं। सोने से बने हुए कड़े, कुण्डल आदि स्वर्णरूप ही तो हैं; इसलिए उनको इस रूप में जानने वाला पुरुष उन्हें छोड़ता नहीं, वह समझता है कि यह भी सोना है। इसी प्रकार यह जगत आत्मा में ही कल्पित, आत्मा से ही व्याप्त है, इसलिए आत्मज्ञानी पुरुष तो इसे आत्मरूप ही मानते हैं।

भगवन् ! जो लोग यह समझते हैं कि आप समस्त प्राणियों और पदार्थों के अधिष्ठान हैं, सबके आधार हैं और सर्वात्मभाव से आपका भजन-सेवन करते हैं, वे मृत्यु को तुच्छ समझकर उसके सिर पर लात मारते हैं अर्थात् उस पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग आपसे विमुख हैं, वे चाहे जितने बड़े विद्वान हों, उन्हें आप कर्मों का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों से पशुओं के समान बाँध लेते हैं। इसके विपरीत जिन्होंने आपके साथ प्रेम का सम्बन्ध जोड़ रखा है, वे न केवल अपने को बल्कि दूसरों को भी पवित्र कर देते हैं, जगत के बंधन से छुड़ा देते हैं। ऐसा सौभाग्य भला, आपसे विमुख लोगों को कैसे प्राप्त हो सकता है।

प्रभो ! आप मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि करणों से, चिन्तन, कर्म आदि साधनों से सर्वथा रहित हैं। फिर भी आप समस्त अंतःकरण और बाह्य करणों की शक्तियों से सदा-सर्वदा सम्पन्न हैं। आप स्वतः सिद्ध ज्ञानवान, स्वयंप्रकाश हैं; अतः कोई काम करने के लिए आपको इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है। जैसे छोटे-छोटे राजा अपनी प्रजा से कर लेकर स्वयं अपने सम्राट को कर देते हैं, वैसे ही मनुष्यों के पूज्य देवता और देवताओं के पूज्य ब्रह्मा आदि भी अपने अधिकृत प्राणियों से पूजा स्वीकार करते हैं और माया के अधीन होकर आपकी पूजा करते रहते हैं। वे इस प्रकार आपकी पूजा करते हैं कि आपने जहाँ जो कर्म करने के लिए उन्हें नियुक्त कर दिया है, वे आपसे भयभीत रहकर वहीं वह काम करते रहते हैं। नित्यमुक्त ! आप मायातीत हैं; फिर भी जब अपने ईक्षणमात्र से, संकल्पमात्र से माया के साथ क्रीड़ा करते हैं, तब आपका अनुक्रम संकेत पाते ही जीवों के सूक्ष्म शरीर और उनके सुप्त कर्म-संस्कार जग जाते हैं और चराचर प्राणियों की उत्पत्ति होती हैं। प्रभो ! आप परम दयालु हैं। आकाश के समान सबमें सम होने के कारण न तो कोई आपका अपना है और न तो पराया। वास्तव में तो आपके स्वरूप में मन और वाणी की गति ही नहीं है। आपमें कार्य-कारणरूप प्रपंच का अभाव होने से बाह्य दृष्टि से आप शून्य के समान ही जान पड़ते हैं, परंतु उस दृष्टि के भी अधिष्ठान होने के कारण आप परम सत्य हैं।

भगवन् ! आप नित्य एकरस हैं। यदि जीव असंख्य हों और सब-के-सब नित्य एवं सर्वव्यापक हों, तब तो वे आपके समान ही हो जायेंगे; उस हालत में वे शासित हैं और आप शासक, यह बात बन ही नहीं सकती और तब आप उनका नियंत्रण कर ही नहीं सकते। उनका नियंत्रण आप तभी कर सकते हैं, जब वे आपसे उत्पन्न एवं आपकी अपेक्षा न्यून हों। इसमें

सन्देह नहीं कि ये सब-के-सब जीव तथा इनकी एकता या विभिन्नता आपसे ही उत्पन्न हुई है। इसलिए आप उनमें कारण रूप से रहते हुए भी उनके नियामक हैं। वास्तव में आप उनमें समरूप से स्थित हैं, परन्तु यह जाना नहीं जा सकता की आपका वह स्वरूप कैसा है। क्योंकि जो लोग ऐसा समझते हैं कि हमने जान लिया, उन्होंने वास्तव में आपको नहीं जाना, उन्होंने तो केवल अपनी बुद्धि के विषय को जाना है, जिससे आप परे हैं। और साथ ही मति के द्वारा जितनी वस्तुएँ जानी जाती हैं, वे मतियों की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न होती हैं; इसलिए उनकी दुष्टता, एक मत के साथ दूसरे मत का विरोध प्रत्यक्ष ही है। अतएव आपका स्वरूप समस्त मतों के परे है। स्वामिन् ! जीव आपसे उत्पन्न होता है, यह कहने का ऐसा अर्थ नहीं है कि आप परिणाम के द्वारा जीव बनते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि प्रकृति और पुरुष दोनों ही अजन्मा हैं अर्थात् उनका वास्तविक स्वरूप, जो आप हैं, कभी वृत्तियों के अंदर उतरता नहीं, जन्म नहीं लेता। तब प्राणियों का जन्म कैसे होता है? अज्ञान के कारण प्रकृति को पुरुष और पुरुष को प्रकृति समझ लेने से, एक का दूसरे के साथ संयोग हो जाने से जैसे 'बुलबुला' नाम की कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, परन्तु उपादन-कारण जल और निमित्त-कारण वायु के संयोग से उसकी सृष्टि हो जाती है। प्रकृति में पुरुष और पुरुष में प्रकृति का अध्यास (एक में दूसरे की कल्पना) हो जाने के कारण ही जीवों के विविध नाम और गुण रख लिये जाते हैं। अंत में जैसे समुद्र में नदियाँ और मधु में समस्त पुष्पों के रस समा जाते हैं, वैसे ही वे सब-के-सब उपाधिरहित आप में समा जाते हैं। (इसलिए जीवों की भिन्नता और उनका पृथक् अस्तित्व आपके द्वारा नियंत्रित है। उनकी पृथक स्वतंत्रता और सर्वव्यापकता आदि वास्तविक सत्य को न जानने के कारण ही मानी जाती है।)

भगवन् ! सभी जीव आपकी माया से भ्रम में भटक रहे हैं, अपने को आप से पृथक मानकर जन्म-मृत्यु का चक्कर काट रहे हैं। परंतु बुद्धिमान पुरुष इस भ्रम को समझ लेते हैं और सम्पूर्ण भक्तिभाव से आपकी शरण ग्रहण करते हैं, क्योंकि आप जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुड़ानेवाले हैं। यद्यपि शीत, ग्रीष्म और वर्षा इन तीन भागोंवाला कालचक्र आपका भ्रूविलासमात्र है, अनुक्रम वह सभी को भयभीत करता है, परंतु वह उन्हीं को बार-बार भयभीत करता है, जो आपकी शरण नहीं लेते। जो आपके शरणागत भक्त हैं, उन्हें भला जन्म-मृत्युरूप संसार का भय कैसे हो सकता है?

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः।

व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ।।

अजन्मा प्रभो ! जिन योगियों ने अपनी इन्द्रियों और प्राणों को वश में कर लिया है, वे भी जब गुरुदेव के चरणों की शरण न लेकर उच्छृंखल एवं अत्यंत चंचल मन-तुरंग को अपने वश में करने का यत्न करते हैं, तब अपने साधनों में सफल नहीं होते। उन्हें बार-बार खेद और सैंकड़ों विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, केवल श्रम और दुःख ही उनके हाथ लगता है। उनकी ठीक वही दशा होती है, जैसी समुद्र में बिना कर्णधार की नाव पर यात्रा करने वाले व्यापारियों की होती है। (तात्पर्य यह कि जो मन को वश में करना चाहते हैं, उनके लिए कर्णधार, गुरु की अनिवार्य आवश्यकता है।)

(श्रीमद् भागवतः 10.87.33)

भगवन् ! आप अखण्ड आनंदस्वरूप और शरणागतों के आत्मा हैं। आपके रहते स्वजन, पुत्र, देह स्त्री, धन, महल, पृथ्वी, प्राण और रथ आदि से क्या प्रयोजन है? जो लोग इस सत्य सिद्धान्त को न जानकर स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से होने वाले सुखों में ही रम रहे हैं, उन्हें संसार में भला, ऐसी कौन सी वस्तु है, जो सुखी कर सके। क्योंकि संसार की सभी वस्तुएँ स्वभाव से ही विनाशी हैं, एक-न-एक दिन मटियामेट हो जाने वाली हैं और तो क्या, वे स्वरूप से ही सारहीन और सत्ताहीन हैं; वे भला, क्या सुख दे सकती हैं।

भगवन् ! जो ऐश्वर्य, लक्ष्मी, विद्या, जाति, तपस्या आदि के घमंड से रहित हैं, वे संतपुरुष इस पृथ्वीतल पर परम पवित्र और सबको पवित्र करने वाले पुण्यमय सच्चे तीर्थस्थान हैं। क्योंकि उनके हृदय में आपके चरणारविन्द सर्वदा विराजमान रहते हैं और यही कारण है कि उन संत पुरुषों का चरणामृत समस्त पापों और तापों को सदा के लिए नष्ट कर देने वाला है। भगवन् ! आप नित्य-आनंदस्वरूप आत्मा ही हैं । जो एक बार भी आपको अपना मन समर्पित कर देते हैं, आपमें मन लगा देते हैं – वे उन देह – गेहों में कभी नहीं फँसते जो जीव के विवेक, वैराग्य, धैर्य, क्षमा और शांति आदि गुणों का नाश करने वाले हैं। वे तो बस, आपमें ही रम जाते हैं।

भगवन् ! जैसे मिट्टी से बना हुआ घड़ा मिट्टीरूप ही होता है, वैसे ही सत् से बना हुआ जगत भी सत् ही है; यह बात युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि कारण और कार्य का निर्देश ही उनके भेद का द्योतक है। यदि केवल भेद का निषेध करने के लिए ही ऐसा कहा जा रहा हो तो पिता और पुत्र में तथा दण्ड और घटनाश में कार्य-कारण का भाव होने पर भी वे एक दूसरे से भिन्न हैं। इस प्रकार कार्य कारण की एकता सर्वत्र एक सी नहीं देखी जाती । यदि कारण शब्द से निमित्त-कारण न लेकर केवल उपादान-कारण लिया जाय। जैसे कुण्डल का सोना तो भी कहीं-कहीं कार्य की असत्यता प्रमाणित होती है; जैसे रस्सी में साँप। यहाँ उपादान-कारण अनुक्रम के सत्य होने पर भी उसका कार्य सर्प अवस्था असत्य है। यदि यह कहा जाय कि प्रतीत होने वाले सर्प का

उपादान-कारण केवल रस्सी नहीं है, उसके साथ अविद्या का, भ्रम का मेल भी है तो यह समझना चाहिए कि अविद्या और सत् वस्तु के संयोग से ही इस जगत की उत्पत्ति हुई है। इसलिए जैसे रस्सी में प्रतीत होने वाला सर्प मिथ्या है, वैसे ही सत् वस्तु में अविद्या के संयोग से प्रतीत होने वाला नाम-रूपात्मक जगत भी मिथ्या है। यदि केवल व्यवहार की सिद्धि के लिए ही जगत की सत्ता अभीष्ट हो तो उसमें कोई आपत्ति नहीं; क्योंकि वह पारमार्थिक सत्य न होकर केवल व्यावहारिक सत्य है। यह भ्रम अज्ञानीजन बिना विचार किये पूर्व-पूर्व के भय से प्रेरित होकर अंधपरम्परा से इसे मानते चले आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में कर्मफल की सत्य बतलानेवाली श्रुतियाँ केवल उन्ही लोगों को भ्रम में डालती हैं, जो कर्म में जड़ हो रहे हैं और यह नहीं समझते कि इनका तात्पर्य कर्मफल की नित्यता बतलाने में नहीं, बल्कि उनकी प्रशंसा करके उन कर्मों में लगाने में है। भगवन् ! वास्तविक बात तो यह है कि यह जगत उत्पत्ति के पहले नहीं था और प्रलय के बाद नहीं रहेगा, इससे यह सिद्ध होता है कि यह बीच में भी एकरस परमात्मा में मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है। इसी से हम श्रुतियाँ इस जगत का वर्णन ऐसी उपमा देकर करती हैं कि जैसे मिट्टी में घड़ा, लोहे में शस्त्र और सोने में कुण्डल आदि नाम मात्र हैं, वास्तव में मिट्टी, लोहा और सोना ही हैं। वैसे ही परमात्मा में वर्णित जगत नाममात्र है, सर्वथा मिथ्या और मन की कल्पना है। इसे नासमझ मूर्ख ही सत्य मानते हैं।

भगवन् ! जब जीव माया से मोहित होकर अविद्या को अपना लेता है, उस समय उसके स्वरूपभूत आनंदादि गुण ढक जाते हैं; वह गुणजन्य वृत्तियों, इन्द्रियों और देहों में फँस जाता है तथा उन्हीं को अपना-आपा मानकर उनकी सेवा करने लगता है। अब उनकी जन्म-मृत्यु में अपनी जन्म-मृत्यु मानकर उनके चक्कर में पड़ जाता है। परंतु प्रभो ! जैसे साँप अपने केंचुल से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, उसे छोड़ देता है, वैसे ही आप माया-अविद्या से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, उसे सदा-सर्वदा छोड़े रहते हैं। इसी से आपके सम्पूर्ण ऐश्वर्य सदा-सर्वदा आपके साथ रहते हैं। अणिमा आदि अष्टसिद्धियों से युक्त परमैश्वर्य में आपकी स्थिति है। इसी से आपका ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य अपरिमित है, अनंत है; वह देश, काल, और वस्तुओं की सीमा से आबद्ध नहीं है। भगवन् ! यदि मनुष्य यति-योगी होकर भी अपने हृदय की विषय वासनाओं को उखाड़ नहीं फेंकते तो उन असाधकों के लिए आप हृदय में रहने पर भी वैसे ही दुर्लभ हैं, जैसे कोई अपने गले में मणि पहने हुए हो, परंतु उसकी याद न रहने पर उसे ढूँढता फिरे इधर-उधर। जो साधक अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने में ही लगे रहते हैं, विषयों से विरक्त नहीं होते, उन्हें जीवनभर और जीवन के बाद भी दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ता है। क्योंकि वे साधक नहीं, दम्भी हैं। एक तो अभी उन्हें मृत्यु से छुटकारा नहीं मिला है, लोगों को रिझाने, धन कमाने आदि के क्लेश उठाने पड़ रहे हैं और दूसरे आपका स्वरूप न जानने के कारण अपने धर्म-कर्म का उल्लंघन करने से परलोक में नरक आदि प्राप्त होने का भय भी बना ही रहता है। अनुक्रम

भगवन् ! आपके वास्तविक स्वरूप को जानने वाला पुरुष आपके दिये हुए पुण्य और पापकर्मों के फल सुख एवं दुःखों को नहीं जानता, नहीं भोगता, वह भोग्य और भोक्तापन के भाव से ऊपर उठ जाता है। उस समय विधिनिषेध के प्रतिपादक शास्त्र भी उससे निवृत्त हो जाते हैं; क्योंकि वे देहाभिमानियों के लिए हैं। उनकी ओर तो उसका ध्यान ही नहीं जाता। जिसे आपके स्वरूप का ज्ञान नहीं हुआ है, वह भी प्रतिदिन आपकी प्रत्येक युग में की हुई लीलाओं, गुणों का गान सुन-सुनकर उनके द्वारा आपको अपने हृदय में बिठा लेता है तो अनन्त, अचिन्तय, दिव्य गुणगणों के निवासस्थान प्रभो ! आपका वह प्रेमी भक्त भी पाप-पुण्यों के फल सुख-दुःखो और विधि-निषेधों से अतीत हो जाता है, क्योंकि आप ही उनकी मोक्षस्वरूप गति हैं। (परंतु इन ज्ञानी और प्रेमियों को छोड़कर और सभी शास्त्र बंधन में हैं तथा वे उसका उल्लंघन करने पर दुर्गति को प्राप्त होते हैं।)

भगवन् ! स्वर्गादि लोकों के अधिपति इन्द्र, ब्रह्मा प्रभृत्ति भी आपकी थाह-आपका पार न पा सके और आश्चर्य की बात तो यह है कि आप भी उसे नहीं जानते। क्योंकि जब अंत है ही नहीं तब कोई जानेगा कैसे? प्रभो ! जैसे आकाश में हवा से धूल के नन्हें-नन्हें कण उड़ते रहते हैं, वैसे ही आपमें काल के वेग से अपने से उत्तरोत्तर दस गुने सात आवरणों के सहित असंख्य ब्रह्माण्ड एक साथ ही घूमते रहते हैं। तब भला, आपकी सीमा कैसे मिले।

हम श्रुतियाँ भी आपके स्वरूप का साक्षात् वर्णन नहीं कर सकतीं, आपके अतिरिक्त वस्तुओं का निषेध करते-करते अंत में अपना भी निषेध कर देती हैं और आप में अपनी सत्ता खोकर सफल हो जाती हैं।'

(श्रीमद् भागवतः 10.87.14-41)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चतुःश्लोकी भागवत

ब्रह्माजी द्वारा भगवान नारायण की स्तुति किये जाने पर प्रभु ने उन्हें सम्पूर्ण भागवत-तत्त्व का उपदेश केवल चार श्लोकों मे दिया था। वही मूल चतुःश्लोकी भागवत है। अनुक्रम

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम।

पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।1।।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।

तद्विद्यादात्मनो माया यथाऽऽभासो यथा तमः।।2।।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।

प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।3।।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।4।।

सृष्टि से पूर्व केवल मैं ही था। सत्, असत् या उससे परे मुझसे भिन्न कुछ नहीं था। सृष्टि न रहने पर (प्रलयकाल में) भी मैं ही रहता हूँ। यह सब सृष्टिरूप भी मैं ही हूँ और जो कुछ इस सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय से बचा रहता है, वह भी मै ही हूँ।(1)

जो मुझ मूल तत्त्व को छोड़कर प्रतीत होता है और आत्मा में प्रतीत नहीं होता, उसे आत्मा की माया समझो। जैसे (वस्तु का) प्रतिबिम्ब अथवा अंधकार (छाया) होता है।(2)

जैसे पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) संसार के छोटे-बड़े सभी पदार्थों में प्रविष्ट होते हुए भी उनमें प्रविष्ट नहीं हैं, वैसे ही मैं भी विश्व में व्यापक होने पर भी उससे सम्पृक्त हूँ।(3)

आत्मतत्त्व को जानने की इच्छा रखने वाले के लिए इतना ही जानने योग्य है कि अन्वय (सृष्टि) अथवा व्यतिरेक (प्रलय) क्रम में जो तत्त्व सर्वत्र एवं सर्वदा रहता है, वही आत्मतत्त्व है।(4)

इस चतुःश्लोकी भागवत के पठन एवं श्रवण से मनुष्य के अज्ञानजनित मोह और मदरूप अंधकार का नाश हो वास्तविक ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होता है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रार्थना का प्रभाव

सन् 1956 में मद्रास इलाके में अकाल पड़ा। पीने का पानी मिलना भी दुर्लभ हो गया। वहाँ का तालाब 'रेड स्टोन लेक' भी सूख गया। लोग त्राहिमाम् पुकार उठे। उस समय के मुख्यमंत्री श्री राजगोपालाचारी ने धार्मिक जनता से अपील की कि 'सभी लोग दरिया के किनारे एकत्रित होकर प्रार्थना करें।' सभी समुद्र तट पर एकत्रित हुए। किसी ने जप किया तो किसी ने गीता का पाठ, किसी ने रामायण की चौपाइयाँ गुंजायी तो किसी ने अपनी भावना के अनुसार अपने इष्टदेव की प्रार्थना की। मुख्यमंत्री ने सच्चे हृदय से, गदगद कंठ से वरुणदेव, इन्द्रदेव और सबमें बसे हुए आदिनारायण विष्णुदेव की प्रार्थना की। लोग प्रार्थना करके शाम को घर पहुँचे। वर्षा का मौसम तो कब का बीत चुका था। बारिश का कोई नामोनिशान नहीं दिखाई दे रहा था। 'आकाश मे बादल तो रोज आते और चले जाते हैं।' – ऐसा सोचते-सोचते सब लोग सो गये। रात को दो बजे मूसलाधार बरसात ऐसी बरसी, ऐसी बरसी कि 'रेड स्टोन लेक' पानी से छलक उठा। बारिश तो चलती ही रही। यहाँ तक कि मद्रास सरकार को शहर की सड़कों पर नावें चलानी पड़ीं। दृढ़ विश्वास, शुद्ध भाव, भगवन्नाम, भगवत्प्रार्थना छोटे-से-छोटे व्यक्ति को भी उन्नत करने में सक्षम है। महात्मा गाँधी भी गीता के पाठ, प्रार्थना और रामनाम के स्मरण से विघ्न-बाधाओं को चीरते हुए अपने महान उद्देश्य में सफल हुए, यह दुनिया जानती है। प्रार्थना करो.... जप करो... ध्यान करो... ऊँचा संग करो... सफल बनो, अपने आत्मा-परमात्मा को पहचान कर जीवनमुक्त बनो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ